श्रीमतेरामानन्दाचार्याय नमः

श्रीराम जयराम जयजय राम श्रीराम जयराम जयजय राम

विश्वकर्मा सूक्त

[विश्व अभियन्ता (इञ्जिनीयर) श्रीराम]

जिसने सूरज चांद बनाया। जिसने तारों को चमकाया॥
जिसने सारा जगत बनाया। जिसने रची हमारी काया॥
उस ईश्वरको सदा मनाओ। उसे प्रेम से शीश झुकाओ॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावा भूमी जनयन्देव एकः॥
(शुक्ल यजुर्वेद, ऋग्वेद अथर्ववेद सामवेद)

व्याख्याकार—दर्शनकेसरी वैदेहीकान्तशरण

श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः

महिमा जासु जानि गणराउ । प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ ॥

ॐ प्रकाशक की शुभेच्छा ॐ

इस पुस्तिका के प्रकाशक महोदय ने अपनी एकमात्र शुभेच्छा केवल एक वाक्य के सीमित शब्दों में इस प्रकार व्यक्त की है—"मित्रभाव से श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के प्रसार प्रचारार्थ।"

प्रकाशक के इन अल्पतम अक्षरों में ही हमें अर्थ अमित अति आखर थोरे' एवं 'स्वल्पं शब्द विचित्र अर्थमतुलम्' के सिद्धान्तानुसार प्रकट की गयी उनकी उदात्त भावना एवं उच्चतम विचारों का हमें सहज अवलोकन होता है। उनकी मङ्गलमयी शुभेच्छा अति प्रशंसनीय और आदरणीय है। इसके गर्भ में सच्ची सम्प्रदाय निष्ठा और श्रद्धापूर्ण सेवा भाव गर्भित हैं।

श्रीसम्प्रदायाचार्य जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजीने विश्वकर्ता एवं वेद द्वारा गम्य होने का उपदेश दियो है—

"विश्वं जातं यतोऽद्धा यदवितमखिलं लीयते यत्र चान्ते,
सूर्यो यत्तोजसेन्दुः सकलमविरतं भासयत्येतदेषः ।
यद्भीत्या वाति वातोऽवनिरपि सुतलं याति नैवेश्वरो ज्ञः,
साक्षी कूटस्थ एको बहु शुभ गुणवानव्ययो विश्वभर्ता ॥
श्रीमानर्च्यः शरण्यो बहुविधविबुधैर्योगी गम्याङ्घ्रिपद्मोऽ-
स्पृश्यः क्लेशादिभिः सत्समुदितसुयशाः सूरिसान्यो वदान्यः
शश्वच्छ्रीरामचन्द्रः सुमहितमहिमा साधु वेदैरशेषै-
र्निर्मृत्युः सर्वशक्तिर्विकलुषविजरो गीर्मनोभ्यामगम्यः ॥

यह विश्वकर्मा सूत्र आचार्य का उपरोक्त उपदेश का इङ्गित विषय एवं श्रीरामानन्दसम्प्रदाय का प्रधान तत्त्व 'ज्ञेय' का निरूपक होने से सबों के लिये और विशेष कर इस सम्प्रदाय के लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण जिज्ञास्य एवं ज्ञातव्य विषय वस्तु है। ऐसा साम्प्रदायिक प्रमुख विषय वस्तु का प्रकाशन सम्प्रदाय

के प्रसार तथा प्रचार के लिये अति आवश्यक है। क्योंकि यह इस सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्त एवं उच्चतम गरिमा को प्रकाशित करता है। इसका प्रचार प्रसार ज्ञान यज्ञ है। भगवान् ने श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है--

"य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्य संशयः॥
न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥
अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति: मे मतिः।"

प्रकाशक जगत् का कल्याण कामना करते हैं। अतः इन्होंने 'मित्रभाव' प्रकट किया है। वेद भगवान् भी हमें यही उपदेश देते हैं—दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥शु.य. ३६।१८।

हम सभी प्रकाशक के इस मित्रभाव का स्वागत करते हैं तथा अपना आभार प्रकट करते हैं। किमधिकं सुविज्ञेषु।

यत् फलं तीर्थयात्रायां यत्पुण्यं यज्ञयायिनाम्।
कपिलानां सहस्रेण सम्यग्दत्तेन यत्फलम्॥
तत्फलं समवाप्नोति पुस्तकैक प्रदानतः॥

(व्याख्याकार दर्शन केशरी वैदेहीकान्तशरण)

ꕥ व्याख्याकार की पुष्पाञ्जलि ꕥ

सीतानाथ समारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम्॥

परमादरणीय पाठक वृन्द!

आप श्रीराम पदारानुरागी महाभागी विद्वज्जनों की सेवा में इस विश्वकर्मासूक्त व्याख्या रूप कुसुमाञ्जलि को समर्पित करने में आनन्द की अनुभूति हो रही है।

मेरे सद्गुरु भगवान अनन्त श्री पं० स्वामी श्रीअवधकिशोर दासजी 'श्रीप्रेमनिधीजी' महाराज संस्थापक श्रीरामानन्दआश्रम जनकपुरधाम, श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध मूर्द्धन्य विद्वान् विचारक, सम्प्रदाय सेवक, लेखक एवं सिद्ध सन्तों में एक थे। उन्होंने शताधिक उच्चकोटि के ग्रन्थों की रचना कर श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के साहित्य भण्डार को समृद्ध कर गौरवान्वित किया है एवं पाठकों का कल्याणपथ प्रशस्त किया है। इन्हीं परम कृपालु गुरुदेव का सन् १९६८ ई० में आदेश मिला कि तुम पत्रिकाओं में लेख भेज कर श्रीरामानन्द सम्प्रदाय की सेवा करो। मैंने कहा गुरुदेव मैं लिखना नहीं जानता हूं। गुरुदेव आशीर्वादात्मक उत्तर दिये– "श्रीकिशोरीजी की कृपा से लिखना आ जायगा। लिखने का साहस तो नहीं हो रहा था। किन्तु गुरुदेव का आशीर्वाद ने लिखने के लिये प्रेरित किया और मेरे लेख पत्रिकाओं (अवधसन्देश, भक्ति भागीरथी, विरक्त, कल्याण आदि) में प्रकाशित होने लगे फिर मानसमणि, जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यपीठ पत्रिका मानस परिवार आदि में भी लेख प्रकाशित होने लगे। अभी नवोदित मणिप्रभा के प्रथम अङ्क में भी श्रीरामपरिकर लेख निकले हैं। इससे प्रोत्साहित होकर मैंने प्रस्तुत विश्कर्मासूक्त की व्याख्या लिखी। यों तो ईश्वर के साधक प्रमाण, ईश्वर की सत्ता और सर्वज्ञता, ईश्वर प्रत्यक्ष प्रमाणवेद्य है। ईश्वर शरीरी है। निर्विकल्प निर्णय, अमूर्त परीक्षा, सगुण निर्गुण तत्त्व विवेक ईश्वर सिद्धि प्रभृति छोटे बडे अनेक लेखोंका ज.गु.श्रीरामानन्दाचार्य पीठपत्रिका में प्रकाशन हुआ है। परन्तु यह विश्वकर्मासूक्त व्याख्या कुछ बडी होने के कारण पत्रिका में स्थान ग्रहण करने योग्य नहीं थी। तथापि जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य पीठाधीश्वर स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्यजी के सौजन्य से इसी जगदाचार्य पीठ पत्रिकाके माध्यम से जन सेवा में प्रस्तुत है।

दैवयोग से स्वनानधन्य श्रीदलपतराम हरिदास देवमुरारीजी का सिंगापुर से. २५० रुपये का अप्रत्याशित प्रयाचित बैंक ड्राफ्ट अकस्मात् मिला। मांगनेपर देनेवाले तो कुछ लोग होते हैं परन्तु विना मागे देनेवाले विरले ही होते हैं। बिना मांगे देनेवालों में भी प्राय: सभी किसी न किसी लाभ की भावना से ही देने वाले होते हैं परन्तु बिना किसी लाभ की भावना या निष्प्रयोजन देनेवाले तो यही प्रथम महापुरुष मुझे मिले। पुनः कुछ दिया उसीको जाता है, जिससे कुछ परिचय रहता है। परन्तु न तो मैं इन्हें जानता हूं और न ये मुझे ही। मैं भारत में रहता हूं और वे सींगापुर अन्य देश में। मैं कोई प्रसिद्ध पुरुष भी नहीं हूं जिससे मुझे जानकर आकृष्ट होकर कोई जाने और दान दे। अतएव इस प्रकार का अयाचित द्रव्य देने और दिलाने में दैवयोग (ईश्वर की इच्छा) ही कारण कही जा सकता है। शास्त्रों में अयाचित द्रव्य को अमृत कहा गया मैं यदि उस श्रेष्ठ द्रव्यको अन्यत्र व्यय करता तो वह मृत हो जाता। अतः मैंने इस द्रव्य को इस विश्वकर्मा सूक्त व्याख्या के छपवाने में व्ययकर अमृत बनाने का उपाय सोचा और इस सम्बन्ध में इन्हें पत्र द्वारा सींगापुर सूचित किया। इन्होंने छपाई के पूरा खर्च भेजदेने की उदारता की है और यह पुस्तिका आप लोगों के हाथों में है।

इन्होंने इस पुस्तिका में अपने विषय में कुछ भी लिखने से मना किया है। केवल मित्रभाव से "श्रीरामानन्द सम्प्रदाय प्रचार प्रसारार्थ" मात्र लिखने का संकेत किया है। परन्तु मेरी आत्मा उनके इस उच्चतम कोटि के विचार, सम्प्रदायनिष्ठा, अद्भुद कार्य और असीम उदारता को गुप्त रखने में असमर्थ है। उनकी सम्प्रदाय निष्ठा, सम्प्रदाय के प्रसार प्रचार के लिये उत्सुकता तथा क्रियात्मक प्रयत्न, अयाचित दान कर्म आदि की भूरि भूरि प्रशंसा कोई भी श्रोता किये बिना नहीं रह सकता

आप श्री सींगापुर में बहुत से मन्दिरों में किसी में प्रेसिडेन्ट किसी में ट्रस्टी, किसी में कमिटी मेम्बर थे। हिन्दू सनडोवमेन्ट बोर्ड जो गवर्नमेम्ट बौडी है, के भी तीन साल तक ट्रस्टी थे। गुजराती एसोसियशन के भी फाउन्डर और लाइफ मेम्बर थे। परन्तु अब शारीरिक समस्या के कारण ये सब छोड़ दिये हैं। वहाँ इनका सोसियशन साल में एक दो प्रोग्राम रामायण भागवत गीता के माध्यम से बनाता है। बडे बढे विद्वान् लोग, फिलोसोफर (दार्शनिक) लोग सब आते हैं। साधु सन्तों का आना जाना रहता है। सभी प्रोग्रामों की व्यवस्था ये और इनका एक दो मित्र ही अबतक करते आ रहे हैं। इनके यहाँ करीब ५०० पुस्तकों का जिसमें श्रीरामानन्द सम्प्रदाय का बाहुल्य साहित्य है, महाभारत, भागवत, भाष्य, गीतादि पुस्तके है।

इनके इन कार्यों एवं अभिरुचियों से सिद्ध है कि विदेश में श्रीरामानन्द की ज्योति दिखाने वाले यही महापुरुष प्रकाश स्तम्भ है। ऐसे श्रेष्ठ श्रीरामानन्द सम्प्रदायानुरागी योग्यतम कर्मठ प्रवासी वन्धु वर हमारे सम्प्रदाय का गर्व है। भगवान् श्रीरामानन्दाचार्य उनके अभ्युदय एवं निःश्रेयस का पथ प्रशस्त करें और उनके द्वारा श्री सम्प्रदाय की सेवा होती रहे।

प्रातः स्मरणीय अपने श्रीगुरुचरणों का स्मरण करता हूं जिनके पवित्र उपदेश प्रेरणा मार्ग दर्शन एवं शुभाशीर्वाद से मैने वेद विज्ञान जैसे कठिन विषय में प्रवेश करने को साहस किया है और सबसे अन्त में "जनक सुता जगजननि जानकी। अतिशय प्रिय करुणा निधन की॥ ताके युग पद कमल मनवौं। जासु कृपा निर्मल मति पावौं॥ निर्मल मति प्रदात्रीं जगज्जननी के चरणों में प्रणाम कर उनकी कृपा की कामना करता हूं। मेरी यह विश्व कर्मा सूक्त की व्याख्या रूपी पुष्पाञ्जलि उनके ही पावन चरणों में समर्पित है। क्योंकि यह वस्तु उन्हीं की है। और जो वस्तु जिसकी होती है। वह उसी को समर्पित की जती है। इत्यलम्।

निवेदक व्याख्याकार—दर्शनकेशरी वैदेहीकान्तशरण।

श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः

ॐ प्राक्कथन ॐ

(ले० दर्शनकेशरी वैदेहीकान्त शरण)

मङ्गल श्लोकाः

कर्ता सर्वस्य जगतो भर्ता सर्वस्य सर्वगः।
आहर्त्ता कार्यजातस्य श्रीरामः शरणं मम॥

विश्वोपादनता यस्य चिदचिद् द्वारिका मता।
कार्या कार्यात्मकं देवं रामचन्द्रं नमामि तम्।

येन चाधिष्ठिता माया सूयते भुवनत्रयम्।
मायिनं मायया वज्र्य रामचन्द्रं नमामि तम्॥

सनत्कुमार संहिता में श्रीराम के अनेक नामों में विश्वकर्मा (विश्वकर्मा श्लो० १८, विद्वत्तमो विश्वकर्त्ता विश्वहर्त्ता विश्वधृकू श्लोक २३, शास्ता विश्वयोनिः श्लोक ३२, विश्व भोजनः श्लोक ७७, विश्वकर्त्ता श्लोक ८९, जगत्कर्त्ता श्लोक ५१, विश्वसृग् विश्वगोप्ता च विश्वभोक्ता च शाश्वतः विश्वेश्वरो विश्वमूर्त्ति विश्वात्मा विश्वभावनः॥ श्लोक १०८-०५ कर्त्ता धाता विधाता च सर्वेषां पतिरीश्वरः। सहस्रमूर्त्ति विश्वात्मा विष्णुर्विश्वधृगव्ययः श्लोक ११३, स्रष्टा श्लोक ११२, आदि कर्त्ता श्लोक ८८, कारणं कर्मकरः कर्मी श्लोक ८१, विश्वरूपी श्लोक ६, व्यापी विश्वरूपो श्लोक ३९, विश्वम्भरो भर्त्ता श्लोक ६० आदि पठित है।

श्रीवैष्णव मताब्ज भास्कर में भी श्रीराम के विषयमें कहा गया है-"विश्वं जातं यतोऽद्धा यदवितमखिलं लीयते यत्र

चान्ते" 'निखिलं यश्च लीनाति श्लोक १८, 'जगत्पते श्रीश जगन्निवास प्रभो जगत् कारण रामचन्द्रः.' श्लोक ५।१५

वेद विज्ञान में भी परात्पर ब्रह्म श्रीराम को विश्वकर्मा कहा गया है और इस विषय में शुक्ल यजुर्वेद में षोडश मन्त्रों का एक विश्वकर्मा सूक्त ही पठित है जिसमें ऋग्वेद के १०।८१ १-७ और १०।८२।१-७ ये चौदह मन्त्र हैं। इसमें वेद विज्ञानुसार श्रीराम का विश्वकर्मा (विश्व अभियन्ता) होने का प्रतिपादन है।

इस विश्वकर्मा सूक्त में परमेश्वर रामका विश्व विशेषण बोधक नाम १ विश्व चक्षु [१७।१८-१९] २. विश्व बाहू (१७।१९) ३ विश्व मुख (१७।१९) ४, विश्व पात् (१७।१५) आदि पठित हैं तथा विश्व क्रिया बोधक नाम १, विश्वकर्मा (१७।१८) २, विश्व शम्भू (१७।२३) ३, साधु कर्मा (१७।२३) आदि प्रतिपादित है। पुनः उन्हें १ पिता (१७ १७) २, अधिष्ठान (१७।१८) ३ सूरि (१७।२२) ४ धीर (१७।२५) ५ वाचस्पति (१७।२३) ६, मघवा (१७।२२) ७ ऋषि (१७।१७) ८ में होता (११।११) ९ त्राता (१७।२४) १०, धाता (१७।२६) ११ विधाता (१७।२६) १२ परम (१७।२६) १३ गर्भ (१७), १४ नाभि (१७), १५ मनोयुव (१७।२३) १६ शासक (१७) १७ इन्द्र (१७) १८ पुरत्रा (१७।३२) १९ निष्ठ तक्षु (१७।२० २० एकः (१७।१५, २६, २७, ३०), २१ देव (१७।१५) २२ गन्धर्व (१७।३२) आदि कहा गया हैं, जो सभी नाम राम के विश्व कर्तृत्व वाचक हैं। इन पदों की व्याख्या से विश्वकर्मा (जगत निर्माता) परमेश्वर राम के स्वरूप एवं कार्यों का बोध होता है तथा ये सभी नाम राम के वाचक सिद्ध होते है। यथा देवः (दिवु क्रीडायाम् दिवा० दीव्यति क्रीडति इति देवः) एवं रामः (रमु क्रीडायाम् भ्वा० रमते क्रीडति इति रामः) ये दोनों

ही पद एक ही अर्थ और एक ही वस्तु के वाचक हैं। दोनों का वाच्यार्थ वा वाच्य विषय एक ही है। 'गन्धर्वः' पद 'राम' के पदार्थ रूप में शब्द कोष में पठित है–'गन्धर्वः शरभो रामः अ, को. २।५।१४।' अतः स्पष्ट राम का वाचक हैं। पुनः 'गां इषुं दधाति इति गन्धर्वः=बाणधारी रामः' से भी यह राम का ही वाचक सिद्ध है। अतः 'परोक्ष वादो वेदोऽयं' एवं 'परोक्ष प्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्ष द्विषः (ऐतरेय १।३।१४, वृहदारण्यक ४।२। २ के अनुसार वैदिक प्रक्रिया से परोक्ष रूप से श्रीराम से लिये प्रयुक्त है। वाचस्पति नाम भी राम के लिये प्रसिद्ध है–"वाक्य ति वरदं वाच्यं श्रीपति पक्षीवाहनम् श्रीरामस्तवराज। अतः उक्त वेदोक्त विश्वकर्मा सूक्त श्रीराम के ही विषय में प्रयुक्त हैं तथा वेद विज्ञानानुसार श्रीराम का विश्व निर्माता अभियन्ता (इंजिनीयर इसका संचालक तथा शासक होना सिद्ध करता है।

जब हम किसी यन्त्र (मशीन) जैसे रेल इञ्जिन मोटर इञ्जिन वायुयान इञ्जिन जलपोत इञ्जिन रेडियो टेलिवीजन चीनीमील कपड़ामील कागजमील लोहा फैक्ट्री आदि को देखते हैं, तो देखते ही उसके निर्माता इञ्जिनीयर का स्मरण होने लगता है। तथा उसके शिल्प ज्ञान और बुद्धि कौशल्य पर चकित होना पड़ता है। ये सभी कथित कल कारखाने आदि यान्त्रिक व्यवस्था से निर्मित और संचालित हैं और भौतिक व्यवस्था मात्र है। परन्तु जब हम अनन्त आकाश में असंख्य तेजस पिण्डों ग्रह उपग्रह नक्षत्र सूर्य तारे चन्द्र आदि को नियम बद्ध नियमित व्यवस्था के अनुसार संचालित और असीम ज्ञान से निर्मित देखते हैं, तो इनके निर्माता के न केवल असीम ज्ञान अपितु असीम शक्ति एवं असीम व्याप्ति का सहज स्मरण होने लगता है। बातें यहीं समाप्त नहीं हो जातीं। यह विश्व रचना निरुद्देस वा निष्प्रयोजन अथवा केवल दर्शन मात्र के लिये नहीं हैं प्रत्युत प्राणियों की

आवश्यकताओं की पूर्तियों के लिये प्रयोजन है और रात दिन प्रातः सायं वसन्त ग्रीष्म वर्षा शरद शिशिर हेमन्त आदि ऋतु व्यवस्था शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष व्यवस्था वर्षा तापशीत वायु अग्नि जल आकाश, मीट्टी आदि की व्यवस्था द्वारा फल दुग्ध, अन्नादि भोजन और पोषण तत्वों की व्यवस्था के द्वारा जीवों के जीवनोपयोगी सभी आवश्यकताओं की पूर्त्ति करने वाले हैं। अतः यह असीम बिज्ञान पूर्ण भौतिक यान्त्रिअ रचना और बौद्धिक व्यवस्था इसके रचयिता (अभियन्ता) के असीम ज्ञान न्याय और असीम दया का परिचायक है।

जब हम जड जगत् की रचना और प्रयोजन तथा उसकी नियमित व्यवस्था से उपर उठकर जीव जगत् पर दृष्टिपात करते हैं तो वाइरस जैसे आँखों से नहीं दिखपढने वाले सूक्ष्मतम जीवों से लेकर ह्वेल जैसे महाविशाल काय जीवों, उद्भिज, उष्मज अण्डज पिण्डज प्राणियों उनके थलचर नभचर जलचर भेदों तथा उनके असंख्य प्रकार के जीवों के अनन्त प्रकार के शरीरों की रचना, उसमें नेत्र, कर्ण, नासिका, रसना त्वक् आदि आवश्यक ज्ञानेन्द्रियों की व्यवस्था, हस्तपादादि कर्मेन्द्रियों की व्यवस्था मस्तिष्क (ज्ञान केन्द्र) की व्यवस्था हड्डी मांस रक्त नश (स्नायु) आदि की व्यवस्था देखकर मानव बुद्धि कुण्ठित होने लगती है। कहानी यहीं समाप्त नहीं हो जाती। जीवों में शारीरिक विकास सन्तान वृद्धि, स्व रक्षा आदि की प्रवृत्ति और उसके सोचने और ज्ञान के चमत्कार देखकर इसके चैतन्य तथा बुद्धि कौशल्य पर चकित हो जाना पडता हैं और इसके निर्माता अभियन्ता का स्मरण होता है। यह विश्व, न केवल यान्त्रिक व्यवस्था है प्रत्युत नियमों की व्यवस्था भी है। और हम उस विश्वकर्मा तथा विश्व नियामक विश्व अभियन्ता (इञ्जिनियर) राम पर विचार करते हैं। यह आध्यात्मिक व्यवस्था है।

विश्व कर्मा पद से ब्रह्म का कारणत्व (निमित्तोपादानत्व) निरूपित है। विष्णु सहस्त्रनाम में ईश्वर का श्लोक २३ में एक नाम 'विश्वरेताः (विश्वस्य कारणत्वात् विश्वरेताः शां. भा. पठित है, इससे ईश्वर का निमित्त कारणत्व ज्ञापित होता है। श्लोक २६ में एक नाम विश्वयोनिः विश्वस्य कारणत्वाद् विश्वयोनिः शां भा. पठित है, इससे उपादान कारणत्वसिद्ध होता है। श्लोक २९ में भी विश्व योनिः' नाम पठित है। श्लोक ३७ में एक नाम विश्वात्मा पठित है (विश्वस्यात्मा विश्वात्मा शां भा) पठित है। श्लोक ३९ में एक नाम विश्वधृग् (विश्वं धृष्णोतीति विश्वधृक्। जिधृषा प्रागल्भे। शां. भा.)। श्लोक ३९ में ही एक नाम विश्वभुक् (विश्वं भुङ्क्ते भुनक्ति पालयतीति वा विश्व भुक् शां भा.। श्लोक ४७ में एक नाम विश्व बाहु (विश्वेषामालम्बनत्वेन विश्वे बाहवोऽस्येति विश्वतो बाहवोऽस्येति वा 'विश्वबाहुः विश्वतो बाहुः श्वे० ३।३ इति श्रुतेः। शां. भा.) श्लोक ५८ में एक नाम विश्व दक्षिणः विश्वस्मात् दक्षिणः शक्तः, विश्वेषु कर्मसु दाक्षिण्याद्वा विश्व दक्षिणः। शां. भा.) श्लोक ९० में एक नाम विश्व मूर्त्ति (विश्व मूर्त्तिरस्य सर्वात्मकत्वाद् इति विश्व मूर्त्तिः शा. भा.) पठित है। अमर कोश में एक नाम विश्वंभर (१।१।२२) और एक नाम विश्व सृड् (१।१।१७) पठित है। अथर्व वेद ६।४७।१ में वैश्वानर विश्वकृद् विश्वशम्भू नाम पठित है तथा २।३४।१ ५ विश्व कर्मा सूक्त ही है। जिसमें दो वार विश्वकर्मा दो वार विश्वकर्मन् और एक वार विश्वकर्मणा पद पठित है। शुक्लयजु र्वेद के प्रकृत विश्व कर्मा सूक्त में सात वार विश्वकर्मा पद पठित है। इसके अतिरिक्त विश्वरूपो (२३।३२, २९।५)विश्वा नर (२३।२३) विश्वासुत्र (२३।२३) विश्वायुः (विश्वान् अयते व्याप्नोतीति विश्वायुः सर्वव्यापकः) १।४, विश्वकर्मा (विश्वान्येव कर्माणि यस्य तथा भूतः) १।४, विश्वधाया (विश्वं दधातीति विश्वधायः'

विश्वधाया विश्वधाता विश्वपोषण कर्ता) १।४ में पठित है। इस प्रकार यह विश्वकर्मा सूक्त जगत् स्रष्टा द्वारा न केवल जगदुत्पादन अपितु धारण पोषण नियन्त्रणादि सभी कार्यों का प्रतिपादक है। विश्व और विश्वकर्मा में ऐसा विलक्षण सम्बन्ध है कि विष्णु का विष्णु सहस्रनाम में प्रथम नाम विश्वं। विश्वस्य जगतः कारणत्वेन विश्वम् इत्युच्यते ब्रह्म। आदौ तु विश्वमिति कार्य शब्देन कारण ग्रहणम्। यद्वा परस्मात पुरुषान्न भिन्नमिदं विश्वं परमार्थस्तेन विश्वमित्य भिधीयते ब्रह्म 'ब्रह्मं वेदं विश्वमिदं वरिष्ठम मु० २।१।११', 'पुरुष एवेदं विश्वम् मु० २।१।१०' इत्यादि श्रुतिभ्यस्तद्भिन्नं न किञ्चित् परमार्थतः सदस्ति, अथवा विशनीति विश्वं ब्रह्म 'तत् सृष्वा तदेवानु प्राविशत् तै. उ. २।६' इति श्रुतेः। किञ्च संहृतौ विशान्ति सर्वाणि भूतान्यस्मिन्निति विश्वं ब्रह्म 'यत प्रयन्त्यभिसंविशन्ति-तै. उ. ३।१ इति श्रुतेः। तथाहि सकल जगत् कार्य भूतशेष विशत्यत्र चाखिलं विशतीत्युभयथापि विश्वं ब्रह्म शा. भ.।) पठित हैं। तिलेषु तैलम् के समान राम जगत् में सर्वत्र रम रहा हैं सर्वव्यापक हैं। वह दिव्य लोक साकेत में क्रीडा कर रहा है। अतः उसका एक नाम दिव्य भी है-'द्यौः स्त्री स्वर्गं च गगने दिवं क्लीबं तयोः स्मृतम्। मे०। द्यु प्रागपागुदक्प्रतीचो यत् पा० ४।२।१०१, दिव्×यत् =दिव्य। शैषिक तद्धित। दिषु क्रीडायाम्-दिवा०। अतः वेदो ने इस तत्त्व का स्पष्ट-निरूपण किया है-"इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्नि यम मातरिश्वान माहुः॥ ऋ० १।१६४।४६॥" दिव्यो दिविजः नि०।'

परमेश्वर को लोग अनेक रूपों में जानते हैं, जिसमें विश्व कर्मा (विश्व निर्माता) रूप सर्व प्रथम है। जो अज्ञानी लोग परमेश्वर की सत्ता को नहीं मानते हैं उन्हें फटकारते हुये कहा गया है-"विश्वं विलोक्याप्यखिलं तदीय, कर्त्तारमीशं नहीं मन्यते

यः । अहं हि जातो जनकं बिनेति, न भाषते विज्ञवरः कथं सः'
विश्व रचना पर दृष्टिपात करने पर इसके रचयिता विश्वकर्मा का ज्ञान सहज में हो जाता है-

जिसने सारा जगत् बनाया । जिसने सूरज चांद बनाया ॥
जिसने तारों को चमकाया । जिसने रची हमारी काया ॥
उस ईश्वर को सदा मनाओ । उसे प्रेम से शीश झुकाओ ॥'

ज्ञानीजन केवल विश्व की अद्भुद् रचना को ही देखकर चकित नहीं होते अपितु इसका नियमित संचालन और नियन्त्रण को देखकर इसके नियन्ता का स्मरण करते हैं-

यात्येकतोऽस्त शिखरं पतिरोषधीना
माविष्कृतोऽरुणपुरः सर एकतोऽर्कः ।
तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवैष दशान्तरेषु ॥ अभि शा. ॥'

न्यायाचार्य श्री उदयनाचार्यजी ने लिखा है-

"कारं कारमलौकिकाद्भुतमयं माया वशात् संहरन्
हारं हारमपीन्द्रजालमिव यः कुर्वन् जगत् क्रीडति ।
तं देवं निरवग्रहस्फुरदभिध्यानानुभावं भवं,
विश्वासैक भुवं शिवं प्रतिनमन् भूयासमन्तेष्वपि ॥

न्या कु. ४. ४।' यह रमु क्रीडायाम् वाच्य राम ही जगल्लीला कार्य कर्ता सिद्ध हैं । ईश्वर को न्याय दर्शन जगत्कर्त्ता (विश्वकर्मा) रूप में स्मरण करता है-क्षित्यङ्कुरादिकं कर्तृजन्यं, कार्यत्वात् घटवत् । न च तत्कर्तृत्व मस्मदादीनां सं भवति इति । अतः तत्कर्तृत्वेन जगत्कर्त्ता ईश्वर सिद्धिः । कार्यत्वाद् घटवच्चेति जगत्कर्त्तानुमीयते ॥' उदयनाचार्यजी कहते हैं कि कारीगर शिल्पी इञ्जिनीयर आदि भी ईश्वर को विश्वकर्मा रूप में उपासना करते हैं-"किं बहुना यं कारवोऽपि विश्वकर्मेत्युपासते न्या. कु. टी. ।' सम्पूर्ण भारत में १७ सितम्बर (कन्यायां रविः) के दिन सभी

यान्त्रिक प्रतिष्ठानों एवं अभियन्ता आदि शिल्पियों के घर बडे धूम धाम से विश्वकर्मा पूजाकी जाती है । अतः विश्वेश्वर राम विश्वेश्वरं राममहं भजामि विश्वकर्मा रूप से सर्वत्र पूज्य हैं ।

वेद में भी लिखा है कि सविता (प्राणियों के उत्पादक परमेश्वर राम षूङ् प्राणिगर्भ विमोचने) ने यन्त्रों के द्वारा पृथिवी को सुस्थिर किया । बिना सहारे (अवलम्ब या स्तम्भ खम्भा) के द्युलोक को दृढता से स्थित किया 'सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णाद स्काम्भने सविता द्यामदृहत । ऋ. १०।१४९।१।' इस प्रकार इस लौकिक इञ्जिनीयों के समान यन्त्रों औजारों के द्वारा पृथिवी की सृष्टि विदित होती है । परन्तु वस्तुतः यात्रि संकोचने यन्त्रयति इति यन्त्रम के अनुसार यह भौतिक तत्त्वों के संकोचन संश्लेषण के द्वारा सृष्टि कार्य का निरूपण हैं ।

संसार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में चार प्रकार के सिद्धान्त कहे जाते हैं १ सृष्टि सिद्धान्त २ विकास वाद का सिद्धान्त ३ आविर्भाव का सिद्धान्त सृष्टि वाद के अनुसार संसार का निर्माता ईश्वर है । न्याय दर्शन और वैशेषिक दर्शन प्रभृति सृष्टि वादी दर्शन ईश्वर को जगत का निमित्त कारण और विश्वकर्ता मानते हैं । २ विकास वाद के अनुसार संसार की सृष्टि नहीं हुई प्रत्युत इसका विकास हुआ है । डारविन साहब प्रभृति इस सिद्धान्त के प्रतिपादक और मानने वाले हैं । सांख्य दर्शन भी प्रकृति के विकास को सृष्टि और ह्रास संकोच को लय मानती है । ३ आविर्भाव वाद के अनुसार ब्रह्म के संकल्प मात्र से यह विश्व माया के द्वारा स्वप्न संसार के रूप में प्रातिभासित सत्ता के रूप में दिखने लगा । ४ परन्तु वेद विज्ञान के अनुसार सृष्टि यज्ञात्मक है और ईश्वर अपनी शक्ति प्रकृति के द्वारा सृष्टि कराकर उसका नियन्त्रण करता है । प्रकृति ही ईश्वर की यन्त्र शाला कारखाना है जिसमें संसार एवं प्राणियों के शरीरों

की रचना होती है। यह प्रकृति ईश्वर का शरीर (चेष्टाश्रयं शरीरम्) है। अतः ईश्वर केवल निमित्त कारण ही नहीं अपितु उपादान कारण भी है। सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्। कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥ प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः। भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्। मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते स चराचरम्। हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते। श्रीमद्भगवद्गीता। इससे यह जगत् स्वप्न नहीं प्रत्युत प्रवाहरूप नित्य सिद्ध होता है। वेद विज्ञान में इस ईश्वरीय प्रकृति का नाम यज्ञ कहा गया है। यज्ञो वै विष्णु रुक्तः के अनुसार यज्ञ ईश्वर विष्णु का स्वभाव (प्रकृति) है। अतः प्रकृत वेदोक्त विश्वकर्मासूक्त में यज्ञात्मक सृष्टिवाद का निरूपण है। जिसका दर्शन आप व्याख्या में किया।

ॐ

देवता ऋषि और छन्द

इस विश्वकर्मासूक्त के देवता विश्वकर्मा, ऋषि भुवनपुत्र विश्वकर्मा और छन्द त्रिष्टुप् है। वेदार्थज्ञान के लिये इनका ज्ञान आवश्यक है—

"अविदित्वा ऋषि छन्दो दैवत्वं योगमेव च।
योऽध्यापयेत् जपेद् वापि पापीयान् जायते तु सः ॥
वेदितव्यं दैवतं हि मन्त्रे मन्त्रे प्रयत्नतः।
दैवतज्ञ हि मन्त्रणां तदर्थमवगच्छति ॥

देवता का लक्षण निरुक्त में कहा गया है—'यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थ पत्यमिच्छन्स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद् दैवतः स मन्त्रो भवति।' अर्थात् मन्त्र में जिसकी स्तुति की जाती है या जिसका वर्णन होता है वही प्रतिपाद्य विषय का वस्तु उस मन्त्र का देवता

होता है। इस सम्पूर्ण सूक्त के मन्त्रों का देवता बिवेच्य वा विषयवस्तु विश्वकर्मा है। विश्वपद के दो दो अर्थ होते हैं- अखिल और स्वगत्। अतः विश्वकर्मा पद के भी दो अर्थ हैं। १अखिल कर्म करने में समर्थ वा करनेवाला तथा २ जगत् को बनानेवाला।

ऋषियो मन्त्र द्रष्टारः के अनुसार मन्त्रों के साक्षात्कार करनेवाले को ऋषि कहते हैं। विषय और विषयज्ञ में सामानाधिकरण्य होता है। अतः इस न्याय से इस सूक्त के ऋषि भुवनपुत्र विश्वकर्मा युक्त ही हैं। दूसरे शब्दों में साक्षात् विश्वकर्मा ही भुवनोत्पत्तिके पश्चात् इस सूक्तके मन्त्रोपदेशक है।

त्रिष्टुपूछन्द के सम्बन्धमें निरुक्त में कहा गया है "त्रिष्टुप् स्तोभत्युत्तरपदा। कातु त्रिता स्यात्। तीर्णतम छन्दः। त्रिवृद्वज्ञः। तस्य स्तोभतीति वा यत् त्रिरस्तोभत् तत् त्रिष्टुभस्त्रिष्टुवम् इति विज्ञायते" नि० ७।३।' इस छन्द का नाम त्रिष्टुप् इसलिए पडा कि त्रिष्टुप् छन्द में स्तुभ शब्द उत्तरभाग में पढा गया है। यह अन्य छन्दों को पार कर गया। और सभी की अपेक्षा विस्तृत है। इसलिए इसके पूर्वभाग में जोडा गया है। अथवा त्रिवृत नामक वज्र की इससे स्तुति की गई है। जिस हेतु से तीनवार स्तुति की गई है वही हेतु त्रिष्टुप् के त्रिष्टुप्त्व का कारण है। वेदों में कहा गया है यद् गायत्रे अधिगायत्रमाहितं त्रैष्टुभं वा त्रैष्टुभान्निरक्षत। यद्वा जगज्जगत्याहितं पद य इत तत् विदुस्ते अमृतत्वमानशुः। गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम्। वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पादाक्षरेण मिमते सप्तवाणीः अथर्व० ७।९।१०।१-२=ऋ १०।१६४।२३-२४।' परमात्मा ने गायत्री द्वारा अर्चन मन्त्रों की सृष्टि की। अर्चनमन्त्र द्वारा साम को बनाया, त्रिष्टुप द्वारा वाक् को बनाया। वाक् के

द्वारा द्विपदा वाक्यों की रचना की और अक्षरों द्वारा सप्त छन्दों अथवा सप्त विभक्तियों की रचना की। छन्दों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा गया है—'अग्नेर्गायत्र्यभवत्सयुग्वोष्णिहया सविता संबभूव। अनुष्टुभा सोम उक्थैर्महस्वान्बृहस्पतेर्बृहती वाचमात्।४। विराण्मित्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टबिह भागो अहः। विश्वान्देवाञ्जगत्या विवेश तेन चाक्लृप्र ऋषयो मनुष्याः। ऋ० १०।१३०। ४-५। गायत्री छन्द अग्नि का, उष्णिक सविता का, सोम अनुष्टुप् का, महस्वान् उक्थ का, बृहस्पति बृहति का मित्रावरूण विराट् का, इन्द्र और सोम त्रिष्टुप् का और अन्य ऋषियों ने जगती छन्द का आश्रय लिया।

५

विश्वकर्मा सूक्तम्

देवता विश्वकर्मा। ऋषिभुवन पुत्र विश्वकर्मा। छन्द-त्रिष्टुप्

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषि र्होता न्यसीदत्पिता नः।
स आशिषा द्रविणमिच्छभानः प्रथमच्छदवराँ आविवेश॥

किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत्।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा विद्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः॥

किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावा पृथिवी निष्टतक्षुः
मनीषिणो मनसा पृच्छतेयु तद्यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्
या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः॥

विश्वकर्मन्हविषा वावृधानः स्वयं भजस्व पृथिवीमुतद्याम् ।
मुह्यन्त्वन्ये अभितः सपत्ना इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥
वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम ।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥
विश्वकर्मन्हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्र मकृणोरवध्यम् ।
तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत् ॥
चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने ।
यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिद् द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥
विश्व कर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक् ।
तेषामिष्टानि समिषां मदन्ति यत्रा सप्त ऋषीन् पर एक माहुः ॥
यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥
तं आजयन्त द्रविणं समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना ।
असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ॥
परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवे भिरसुरैर्यदस्ति ।
किं स्विद् गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त पूर्वे
तमिद् गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभावध्येक मर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थु ।
न तं विधाय य इमा जनानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थ शासश्चरन्ति ॥
विश्वकर्मा अजनिष्ट देव आदिद् गन्धर्वो अभवद् द्वितीयः ।
तृतीयः पिता जनितौषधींनामपां गर्भं व्यदधात्पुरुत्रा ॥

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

ꢢ विश्वकर्मा सूक्तम् ꢢ

दीपिका

१

य इमा विश्वाभुवनानि जुहुदृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः ।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवरां आ विवेश ॥

शु.य. १७।१७=ऋ. १०।८१।१॥

दर्शनकेशरी पं. वैदेहीकान्त शरण

मङ्गल श्लोकाः

विश्वभृग्विश्वगोप्ता च विश्वभोक्ता च शाश्वतः ।
विश्वेश्वरो विश्वमूर्ति विश्वात्मा विश्वभावनः ॥
कर्ता धाता विधाता च सर्वेषां पतिरीश्वरः ।
सहस्रमूर्तिर्विश्वात्मा विष्णुर्विश्वधृगव्ययः ॥
गुणाकरो गुणश्रेष्ठः सच्चिदानन्दः विग्रहः ।
अभिवाद्यो महाकायो विश्वकर्मा विशारदः ॥
विश्वकर्ता महायज्ञो ज्योतिष्मान्पुरुषोत्तमः ॥
संसारतारको रामः सर्वदुःख विमोक्ष कृत् ।
विद्वत्तमो विश्वकर्त्ता विश्वहर्त्ता च विश्वधृक् ॥

[श्रीराम सहस्रनाम]

य=यद् सर्वनाम का पुल्लिंग प्रथमा एक वचन का रूप य है। जो पद ज्ञा के बदले प्रयुक्त होता है. उसे सर्वनाम कहते हैं। इस 'य' का अर्थ 'जो'। यह सर्वनाम विश्वकर्मा संज्ञा के बदले प्रयुक्त हुआ है। अतः इसका अर्थ हुआ जो विश्वकर्मा। इसके एक वचन से विश्वकर्मा के संख्या का बोध

होता है कि बह जिज्ञासितव्य विश्वकर्मा एक ही है, अनेक नहीं और उसकी प्रथमा विभक्ति से उसके कर्तृकत्व का बोध होता, जो व्याकरण शास्त्र के दृष्टिकोण से क्रिया का सम्पादन करनेवाला और स्वतन्त्र [क्रिया संम्पादकः कर्त्ता व्यापाराश्रयः कर्ता स्वतन्त्रः कर्ता] तथा न्याय शास्त्र के दृष्टिकोण से कर्त्ता लक्षण है—कारण विषयक साक्षात्कारात्मक ज्ञान करने इच्छा और कार्यानुकूल व्यापार से युक्त (उपादानगोचरापरोक्ष ज्ञान चिकीषा कृतिमान् कर्ता और स्वतन्त्र का अर्थ है चेतन [स्वातन्त्र्ये जडतो हानिः न्या. कु. ५।४] इन्हीं का निर्देशक यहाँ प्रथमा विभक्ति प्रयुक्त है [निर्देशे प्रथमा प्रोक्ता सैव यामन्त्रणेष्वपि पुल्लिगत्व इसके पुरूषार्थ का बोधक है, एवं सांख्य शास्त्र की दृष्टि में 'पुरुष' का बोध है तथा वेद विज्ञान की दृष्टि में पुरुष (परमेश्वर जिसका निरूपण वेदों के पुरुष सूक्तों में है। एवं 'पुरुष एवेदं सर्वं यच्चभूतं यद्भाव्यम्' श्रीमद्भगवद्गीता तथा वैष्णव शास्त्रों की दृष्टि में आदि पुरुष, अनादि, पुरुष, पुराण पुरुष आदि नामों से प्रसिद्ध पुरुषोत्तम का प्रतिपादक है, जिसके सम्बन्ध में श्रीउदयनाचार्यने न्याय कुसुमाञ्जलि टीका में लिखा है 'पुरुषोत्तम इति वैष्णवाः' और याज्ञियों की दृष्टि में—यज्ञ पुरुष इति याज्ञिकाः।' तथा योग दर्शन की दृष्टि में पुरुष विशेष (क्लेश कर्म विकाशयैरपरामृष्ट पुरुष ईश्वरः) का बोधक है। अतः यहां य पद चेतन अद्वितीय विश्वकर्मापुरुष का प्रतिपादक है।

इमा—इमा पद इदम् सर्वनाम का स्त्रीलिङ्ग के द्वितीया बहुवचन का रूप है। जो वस्तु समीप में प्रत्यक्ष रहता है उसके लिये इदम पद का प्रयोग होता है। (इदमस्तु सन्निकृष्टं स्यात्) यहाँ इमा पद विश्वा भुवनानि (विश्व के चौदहों भुवनों को अथवा अखिल भुवनो को)का बोधक है। द्वितीया विभक्ति इसके कर्मत्व (क्रिया व्यापार का फलरूप (क्रियया क्रान्तं कर्म्म। फला-

श्रयः कर्म ।) और कर्त्ता का सबसे अधिक इच्छित वस्तु-'कर्तुरी झप्सिततमंकर्म) का बोधक है ।) यहाँ स्त्रीलिङ्ग सांख्य दर्शन की दृष्टि में त्रिगुण प्रकृति का वोधक है और बहुवचन वैशेषिक दर्शन की दृष्टि में नवद्रव्यों का प्रतिपादक तथा विशिष्टाद्वैत वेदान्तमत चिदाचिद्ब्रह्म के चिदचिद का निरूपक है ।

विश्वा 'विश्वात्वति विषयी स्त्री जगति स्यान्नपुंसकम् । मे० । विश्वमशेषं कृत्स्नं समस्त निखिलाखिलानि निःशेषम् । समग्रं सकलं पूर्णमखण्डं स्यादनून के । अ. को.' यह जगत् और पूर्णवोधक विश्वा पद-'पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमदुच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।' पूर्ण है वह पूर्ण है यह पूर्ण से निष्पन्न होता पूर्ण है । पूर्ण में से पूर्ण को यदि लें निकाल । शेष तब भी पूर्ण ही रहता सदा के। गणित विज्ञान का बोधक है एवं-'पूर्णात् पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते । उतो तदय विद्याम यतस्तत् परिषिच्यते । अथर्व० १०।८।२९।' का बोधक है । यह जगत् की अन्यूनता का परिचायक है ।

भुवनानि=भुवनं पिष्टपेऽपि स्यात् सामिलं गगने जने- मे० ।' अथो जगतो लोको भुवनं जगत्-अ.को. २।१।६।' द्वितीया बहुवचन उपरोक्त फलाश्रयत्वदी अर्थों का प्रतिपादक है ।

जुह्वत्=हु दानादनयोः दानं चेह वैध आधारे हविष प्रक्षेपः 'हविर्होतव्य मात्रे च सर्पिष्यपि नपुंसकम्-मे० ।' लिङर्थे लेट् । छन्दसि लुङ् लिङ् लिट् सर्वकालेषु विधिबिङ्योर्यः कृति साध्यत्वे सति बलवेदनिष्टा जनकेष्ट साधनत्वम्' ।

ऋषिः=ऋषी गतौ (तुदा०) सर्वव्यापकः, सर्वगः, सर्वद्रष्टा (ऋषिर्दर्शनात्, ऋषयोर्मन्त्र द्रष्टारः) कान्ति दर्शि सर्वज्ञः ।

होता=हु+तृच्=होता=हविष प्रक्षेपकः । हवन करनेवाला यज्ञ-कर्ता या पुरोहित ।

न्यसीदन=षद्लृ विशरण गत्यवसादनेषु-भ्वा । लङ् लङो-ऽनद्यतनत्वमतीतत्वञ्चार्थवः ।

पिता=पा रक्षणे+तृच्=तातीति पिता रक्षकः। उत्पादकः स्रष्टा जनिता चोपनेता च यश्च विद्यां प्रयच्छति। अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृता'

नः=अस्मद् सर्वनाम का षष्ठी बहुवचन अस्माकम्, नः। सम्बन्ध ज्ञापन में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है शेषे षष्ठी यह सम्बन्ध चार प्रकार का होता है-१ स्वस्वामिभाव सम्बन्ध साधोर्धनम्), २ जन्यजनकभाव सम्बन्ध (पितुः पुत्रः) ३ अवयवावयवी सम्बन्ध (पशोः पादौ) और ४ स्थान्यादेश ब्रूो वचिः)। नः सर्वनाम समस्त विश्वका कर्मा के साथ उक्त चतुर्विध सम्बन्धों का ज्ञापक है। अथवा द्वितीया ब.ब. अस्मान् एवं चतुर्थीब. व अस्मभ्यम् का बोधक हैं जो क्रमशः फलाश्रय (कर्म और प्रवृत्त्याश्रय प्रयोजन (सम्प्रदान) का बोधक है।

स=स पद तद् पुल्लिग सर्वनाम के प्रथमा एक वचन का रूप है और यह मन्त्र के प्रथम चरणोक्त य सर्वनाम पद वाच्य सम्पूर्ण वाक्य-'य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः का वाचक तथा उसको सम्पूर्ण द्वितीय चरण 'स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवरां आविवेश' से जोडने वाला संयोजक सर्वनाम है (यः-सः) ब्रह्म के विषय में पुल्लिग सर्वनाम सगुण साकार के लिये प्रयुक्त होता है और नपुंसक लिङ्ग सगुण निराकार (अव्यक्त) के लिये तथा स्त्रीलिंङ्ग (सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः शु य. १।४) ब्रह्म की शक्ति अभिन्न सगुण साकार शक्ति श्रीसीतातत्वबोधक।

आशिषा:=आङ्शासु इच्छायाम्। यह ब्रह्म की इच्छा शक्ति का बोधक है-'इच्छा ज्ञान क्रिया शक्ति त्रयं यद्भाव साधनम्। तद् ब्रह्म सत्ता सामान्यं सीतातत्त्व मुपास्महे।' इच्छा ही प्रथम प्रवर्तक-आदि प्रवर्तिका इच्छा। न्यायदर्शन भी कर्तृत्व के लिये' इच्छा ज्ञान और प्रयत्न' को मानता है। अतः यहां

आशिषा (इच्छाबोधक) पद विश्वकर्मा के आदि प्रवर्तक शक्ति का ज्ञापक और करण कारक (यद्व्यापाराव्यवधाने न कार्य निष्पत्तिस्तत्करणम्) का बोधक तृतीया विभक्ति है।

द्रविणम्=द्रविणं च द्वयो वित्त काञ्चने च पराक्रमे-मे० 'द्रविणं तु बलं धनम्-अ.को.' यहाँ कर्म कारक फलाश्रयः कर्म एवं 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' आदान कारण या कार्य एवं अभीष्ट, प्रयोजन या कर्म का ज्ञापक है।

इच्छमानः=इषु इच्छायाम्-तुदा०शानच् (लटः शतृशानचा-वप्रथमासमानाधिकरणे-पा० ३।२।१२४) किसी कार्य की समानाधिकरणता या समकालीनता के ज्ञापन तथा किसी विद्यमान परिस्थिति अथवा विशेषता एवं कार्य कारण ज्ञापन के लिये शानच् कृदन्त प्रत्यय का प्रयोग होता है। प्रकृतधात्वर्थकर्त्ता शतृ शानचोः धात्वर्थ जन्य फलवान् कर्मशानचोऽर्थः।

प्रथम=प्रथमस्तु अवेदादौ प्रधानेऽपि च वाच्यवत् मे०।'

अच्छदत्=छद अपवारणे (चुरा०)+लिङ्।

अवरा-'अवरं गजान्त्यजङ्घादि देशे चरमे त्रिषु-मे०।'

आविवेश-आ=समन्ताभावेन। आ इत्यभोगार्थे-नि०। विश प्रवेशने-तुदा०।

वेद विज्ञान के अनुसार विश्व की सृष्टि यज्ञात्मक है। सृष्टि यज्ञ है। यज्ञ में होता घृतादि हवन सामग्री, समिध, अग्नि आदि उपकरण होते हैं। इस सृष्टि यज्ञमें हवनकर्ता ब्रह्म (विश्वकर्मा) है, अग्नि भी वही है। हवन सामग्री आदि भी वही है-'ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवोमिताः। अध्वर्यु ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः। ब्रह्म स्रुचो घृतवती ब्रह्मणा वेदिरुद्धिताः। ब्रह्म यज्ञस्य तत्त्वं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः। अथर्व० १९।४२।१-२।' ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविशमिताय स्वाहा। अथर्व० १९।४२।१-२।' ब्रह्मार्पणं ब्रह्महवि-

ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् । ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना । श्रीमद्भगवद्गीता । ४।२४ ।' विष्णु का नाम ही यज्ञ है–'यज्ञो वै विष्णुः–तै.सं. १।७।४ ।' इस यज्ञात्मक सृष्टि के सम्बन्धमें वेदो के पुरुषसूक्तमें लिखा है–'तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् । पशूं स्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये । तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे । छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत । तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः गावोह जज्ञिरे तस्मात्तस्माजाता अजावयः । तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये । यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः । सप्तस्यासन्परिधयस्त्रि सप्त समिधः कृताः देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् । यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । तेह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ।' यज्ञ को ही सम्पूर्ण जगत् की नाभि कहा गया है–'अयं यज्ञो विश्वस्य नाभिः ऋ. १।१६४।३५=शु.यं. २३।६२ =अथर्व ९।१०।१४।' इस लोक में भी इञ्जिनीयर अभियन्ता)इञ्जिन के भट्ठी में इंधन (कोयला, पेट्रोल, डीझल, यूरेनियम, विद्युत) का हवन करता है तो उससे यन्त्र चालित होकर अभीष्ट कार्य सम्पादित होता है । इस सृष्टि यन्त्र के निर्माण एवं चालित होने के लिये भी इंधनादि के हवन की आवश्यकता है । वसन्त को इस यज्ञ का घृत ग्रीष्म को इंधन और शरद को हविः कहा गया है । कविवर कालिदासजीने अपने प्रसिद्ध अभिज्ञान शाकुन्तलम् के मङ्गलश्लोक में भी इस यज्ञात्मक सृष्टि का निरूपण किया है 'या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री, ये द्वे कालं विधत्तः श्रुति विषय गुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम् । या माहुः सर्वबीजं प्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः । प्रत्यक्षाभिः प्रसन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः ।१।' इस श्लोक में प्रकृत व्याख्यातव्य वेदमन्त्र का संकेत है । 'अथाग्नौ

रविरिन्दुश्च भूमिरापः प्रभञ्जनः यजमानः खमष्टौ महादेवस्य मूर्तयः शब्दमाना ।' अष्टजाता भूता प्रथमज ऋतस्य, इन्द्र ऋत्वियो दव्या ये । अष्ट योनिरदितिरष्टपुत्रारष्टमी रात्रिमभिहव्यमेति । ।अथर्व०। ८।९।२१।' आदि से भी यह प्रकृति यज्ञ वा सृष्टि का ज्ञापन होता है । यज्ञाग्नि से निर्गत धूम पर्जन्य बनकर वृष्टि करता है, जिससे अन्नादि की उत्पत्ति होती और प्राणियों की उत्पत्ति तथा पोषण होता है 'अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न संभवः यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम् । तस्मात्सर्व गतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् । एवं प्रवर्तितं चक्रम् श्रीमद्भगवद्गीता ३।१४।१६ यही सृष्टि चक्र है । यही सृष्टि यज्ञ में 'वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः' में भी पर्जन्यादि की उत्पत्ति, अन्नादि की उत्पत्ति, प्राणियों की उत्पत्ति एवं उनके पोषणादि के तत्त्व है जो वैज्ञानिक है ।

अग्नौ प्राप्ताहुतिः सम्यगादित्यमनुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ।।

अतः वेद का विश्वकर्मा: याज्ञिक मीमांसक का 'यज्ञ पुरुष याज्ञिकाः इति न्या. कु. टी. एवं नैयायिकों का कर्तेति नैयायिकाः हनुमन्नाष्टक एक ही 'यज्ञो वै विष्णुः तै. सं. १।७।४' यज्ञकर्ता यज्ञभोक्ता यज्ञभर्ता महेश्वरः । अयोध्या मुक्तिदः शास्ता श्रीरामः शरणं मम ब्र. सं. २।७।२३।। यज्ञेशं यज्ञ पुरुषं यज्ञ पालन तत्परम् । श्रीरामस्तवराज श्लो० ४२।।' यज्ञ पुरुष श्रीराम का वाचक और प्रतिपादक है । आधुनिक यन्त्रशाला भौतिक यन्त्र शाला है और श्रीराम की यन्त्र शाला आध्यात्मिक या दैविक यन्त्र शाला है । श्रीराम ही सृष्टि कर्ता विश्व कर्मा हैं । यज्ञ को ही पृथिवी को धारण करने वाला आधार कहा गया है—"सत्यं बृहत् ऋतं उग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति अथर्व० १२।१।१।।

यज्ञ में अरणी मन्थन द्वारा अग्नि उत्पन्न की जाती है और वह अग्नि पूर्व से ही काष्ठ में वर्तमान रहती है। विश्वकर्मा राम (सबों में रमण करने वाला सर्व व्यापक) भी वैसा ही है एक दारु गत देखिअ एकू। पावक सम युग ब्रह्म विवेकू। वह सृष्टि यज्ञ में दारु गत अप्रकट अग्नि से प्रकट प्रज्वलित अग्नि के समान प्रकट होता है तब सृष्टि चक्र प्रवर्तित होता है और जब प्रकट से अप्रकट हो जाता है तब सृष्टि चक्र विरमित हो जाता है।

प्रथम मन्त्र का संक्षिप्त अर्थ है कि नः (हम सभी चराचर जगत् का पिता (१. उत्पन्न करनेवाला २. संस्कार करनेवाला, ३ विद्या (ज्ञान) देनेवाला ४ अन्नदाता (पोषक) और रक्षक भय त्राता य (जो) ऋषिः [सर्वद्रष्टा] होता हवन कर्ता है सृष्टि यज्ञ कुण्ड में इन्धन डालने वाला इमा विश्वा भुवनानि इन अखिल भुवनों को जुहृत हवन कर वा हवन करते हुये न्यसीदत् बैठ गये स वह आशिषा स्वेच्छा से द्रविणमिच्छमानः पराक्रम करता हुआ प्रथमं प्रथम अवरां अपने से भिन्न दुसरों को अच्छत् आच्छादित कर दिया सभी को व्याप्त कर दिया आविवेश और स्वयं उनमें प्रवेश कर गये वा उक्त यज्ञाग्नि में हुत हो गये।

इस प्रकार इस मन्त्र में परात्पर ब्रह्म विश्व कर्मा श्रीराम के यज्ञात्मक सृष्टि विज्ञान का निरूपण है। वे जगत् निर्माण कर उसमें व्याप्त हो जगत् रूपमें प्रकट हुए। तस्मात् रामस्य रूपोऽयं सत्यं सत्यमिदं जगत् श्रीरामस्तवराज। सत्य त्रिकाल व्यापी सत्ता।

२

किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत्।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा विद्यामौर्णोन्महिना विश्व चक्षाः

शु. य. १७।१८=ऋ. १०।८१।२॥

किं=किं कुत्सायां वितर्के च निषेध प्रश्नयोरपि मे०' 'किं पृच्छायां जुगुप्सने अ. को. ३।३।२५१। आहो उताहो किमुत विकल्पे किं किमूत च अ. को.

स्विद='स्वित् प्रश्ने च वितर्के च तथैव पाद पूरणे मे०।,' स्वित् प्रश्ने च वितर्के च अ. को ।युक्तया अर्थ निर्णयो वितर्कः अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः ।

आसीत्=अस भुवि अदा० भवनं भूः । सत्तायामित्यर्थः । अनद्यतने लङ् पा. ३।२।१११। लङोऽनद्यतनत्वमतीतत्वञ्चार्थः । सुदूर वर्ती भूतकाल की घटनाओं के वर्णन में लङ् का प्रयोग होता है ।

अधिष्ठानम्=अधिस्यादधिकारे चापीश्वरे च निगद्यते मे० । अधि इत्युपरि भावमैश्वर्यं वा निरुक्त।। अधिरूपरिभावे । 'उपरि भावश्च पठने नियम पूर्वकत्वम् इति भूवादि सूत्रे भाष्ये ।' 'ष्ठा गति निवृत्तौ भ्वा० तिष्ठति । उपसर्गात् अधितष्ठौ ।' अधिष्ठाता अधिष्ठानं पुरे चक्रे प्रभावेऽध्यासनेऽपि च मे० ।' 'अधिष्ठानं चक्र पुरे प्रभावाध्यासनेष्वपि ।। अ. को. ३।३।१२६।।' 'अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् । विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ।। पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्व कर्मणाम् ।। श्रीमद्भगवद् गीता ।।' "अधिष्ठीयते भगवच्छरीर भूतेनात्मना यस्मिं स्तदधिष्ठानं भोगायतन शरीरम्" आनन्दभाष्य "अधिष्ठानमधिष्ठीयते स्वकर्मफल भोगायात्मना यत्तत्पञ्च भूतसंघातरूपं शरीर मेवाधिष्ठानं बाहुल कात्कर्मणिल्यूट् । छान्दोग्येऽप्यधिष्ठान शब्दः शरीर निबन्धनः श्रूयते मघवन्मर्त्यं वा इदं शरीरमात्तं तदस्यामृतस्या शरीरस्यात्मनोऽधिष्ठानम् छा. ८।१२।१ गीतार्थं चन्द्रिका अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्, प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ।। गीता ।। अधिष्ठानम् अधिकरणम् आधारोऽधिकरणम् ।

आरम्भणम् रम राभस्ये भ्वा०, रामस्य शीघ्रीभावः आङ् पूर्वकस्तु प्रारम्भार्थकः । 'आरम्भस्तु त्वरायां स्यादुद्यमेवधदर्पयोः मे०। स्यादभ्यादान मुद्घात आरम्भः अ. को. । आरम्भणमुपादानम् । आरम्भवाद=सृष्टिवाद । आरम्भ के लिये 'राम' और अन्त समाप्ति के लिये विराम पद का प्रयोग होता है । 'राम से विराम पर्यन्त का अर्थ 'आरम्भ से अन्ततक होता है । सृष्टि स्थिति प्रलय का प्रामाणिक चक्र अनादि काल से चल रहा है । आरम्भ पर यहाँ प्रलय के अन्त और सृष्टि के आदि क्षण में विश्वकर्मा जगत्कर्ता का अभिमत फलोत्पादनार्थ सृष्टि व्यापार में प्रवृत्ति का प्रतिपादक है । सृष्टि कार्य को राम ठम शुभारम्भ आरम्भण है । और विराम ही प्रलय ।

कतमत् = किमासीत !

स्वित् = इसकी व्याख्या ऊपर की जा चुकी है ।

कथा = प्रकार अर्थ में किम् शब्द में स्वार्थिक थमु प्रत्यय होता है-'किमश्च पा० ५।३।२५। केन प्रकारेण कथम । कथवाक्य प्रबन्धे.चुरा० कथयति । प्रबन्ध कल्पना कथा अ. को. । कथा प्रसङ्गे वातूले विष वैद्ये च वाच्यवत् मे० । 'किं कुत्सायां वितर्के च निषेधे प्रश्नयोरपि मे० ॥

यतो = कारण वाचक आनुमानिक बोधक अव्यय । यतः क्योंकि । यत्तद्यस्ततो हेतौव अ. को. । यद्गर्हाहेत्ववधृत्योः मे०। यतो=यस्मात् कारणात अधिष्ठानाद्वा ।

भूमिम् भू भूमिरचलाऽनन्ता रसा विश्वम्भरा स्थिरा धरा धरित्री धरणिः क्षोणिर्ज्या काश्यपी क्षितिः ॥ सर्वं सहा वसुमती वसुधोर्वी वसुन्धरा । गोत्राः कुः पृथिवी पृथ्वी क्ष्माऽवनिर्मेदिनी मही अ. को. । भूर्वसुन्धरायां स्यात् स्थानमात्रेऽपि च स्त्रियाम् । मे० ।

भू सत्तायाम् । आत्मधारणं सत्तेत्युच्यते । स्वरूपेणावस्थान मिति यावत् । भवतीति भूमि पदार्थ जातम् । भवतिति भूमिः से इसकी अभिव्यक्ति या आविर्भाव सिद्ध होता है, उत्पत्ति नहीं । सत्कार्य वाद सिद्ध होता है, असत्कार्य वाद नहीं । जो उपादान कारण में पहले (पूर्व) से सत्ता में रहकर करण व्यापार से आविर्भूत वा प्रकट होता है उसे अभि व्यक्ति और जो उपादान में पूर्वसे सत्ता में न रहकर करण व्यापारसे सत्ता में आता है उसे उत्पत्ति कहते हैं । जनवन=जनी प्रादुर्भावे दिवा० शत । उत्पादयन् । यह सत्कार्यवाद और जगत् नित्यवाद का प्रतिपादक है । क्योंकि यहाँ अभिव्यक्ति वाद का निरूपण किया गया है यह असत्कार्यवाद उत्पत्ति वाद वा आरम्भ वाद का प्रत्याख्यातक है और 'सूर्यचन्द्र मसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत् ऋ. १० ।१०९।२" के अनुसार जगत् के पूर्वकल्प के अनुसार प्रादुर्भाव एवं प्रवाह रूप नित्यता और अभिव्यक्ति का प्रतिपादक है ।

विश्वकर्मा=विश्वकर्मा सहस्रांशौ मुनिभिर्देवशिल्पिनोः मे० । कर्म क्रिया अ. को. ३।२।१।' कर्मास्त्री व्याप्य क्रिययोः मे० । विश्वान्येव कर्माणि यस्य तथा भूतः बिश्वकर्मा । विश्व कर्मा सर्व क्रिया करण समर्थः । विश्वकर्मा रामः श्रीरामस्तवराज) श्लो० १२।

विद्याम्= विद सत्तायाम (दिवा०) सत्तायां विद्यते । वि विशेष रूपेण । सम इत्येकी भावम् । 'वि' 'अप' इत्येतस्य प्रति लोम्यम् । नि० । द्यौः स्त्री स्वर्गे च गगने दिवं क्लीवं तयोः स्मृतम मे० । 'सुरलोको द्यो दिवौ द्वे स्त्रियां क्लीवे त्रिविष्टपम् अ. को. १।१।६।"

और्णोत् ऊर्णुञ् आच्छादने (अदा०) और्णोत् आच्छादितबान्

महिना=मह पूजायां । महीनद्यन्तरे भूमौ मह उत्सव तेजसोः । मे० । महिना=तेजसा, महात्म्येन ।

विश्व चक्षा=चाक्षङ् व्यक्तायां वाचि दर्शनेऽपि (अदा०) रूप ग्राह्य इन्द्रियं चक्षुः । विश्व चक्षा सर्व द्रष्टा विश्व नियामकः विश्व रक्षकः, विश्व पोषकः । विश्व वक्ता वाचस्पतिः, वाक्पतिः कर्तृवाचक कृत प्रत्यय अच् नन्दि ग्रहि पचादिभ्यो ल्युणिन्यचः पा० ३।१।१३४। चक्ष×अच=चक्षः ।

मन्त्र का संक्षिप्त अर्थ है कि स्विदासीदधिष्ठानम्

अधिष्ठान वा कार्य का अधिकरण आधार या आश्रय क्या था ?) आरम्भणं कतमत् स्वित् कथा सीत् (कार्यारम्भ कहाँ और किस प्रकार किया ! यतो भूमि जनयन् विश्व कर्मा (विश्वकर्मा ने जहाँ जगत को उत्पन्न करते हुये) विद्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षा विश्वद्रष्टा ने अपने तेजसे पृथिवी और आकाश को आच्छादित किया ।)

इस मन्त्र में प्रश्न (जिज्ञासा) द्वारा विश्व के कारण वा सृष्टि कार्य का अनुसन्धान है । मन्त्र के स्वित् पद से युक्त्या अर्थ निर्णयो वितर्कः के द्वारा विषय निर्द्धारण की कांक्षा इङ्गित की गयी है । अधिष्ठान पद से मूल आधार के ज्ञापन की जिज्ञासा है । अधिष्ठान (अधिकरण) चार प्रकार का होता है—१ औप श्लेषिक (जिसके साथ आधेय का भौतिक संश्लेष हो यथा कटे आस्ते काकः) २. वैषयिक (जिसके साथ आधेय का बौद्धिक संश्लेष हो यथा मोक्षे इच्छा अस्ति) ३. अभिव्यापक (जिसके साथ आधेय का व्याप्य व्यापक सम्बन्ध हो तिलेषु तैलम्) ४. सामीप्यक (जिसके साथ आधेय के सामीप्य का सम्बन्ध हो यथा । गङ्गायां घोषः) । विश्वकर्मा का विश्व (जगत) के साथ इनमें से कौन सा अधिष्ठानत्व है ? द्वैत वेदान्त और न्याय वैशेषिक तथा सांख्य दर्शनों के अनुसार औप श्लेषिक अद्वैत वेदान्त के अनुसार वैषयिक तथा विशिष्टाद्वैत वेदान्त के अनुसार अभिव्यापक अधिष्ठानत्व है । 'रमते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु

च । अन्तरात्म स्वरूपेण यच्च रामेति कथ्यते ॥ स्क० पु० ॥'
के अनुसार कण कण में राम राम् रहा है (व्यापक) है । अतः
उस विश्व कर्मा राम का जगत् के साथ अभिव्यापक अधिष्ठानत्व
है । 'जगत सर्व शरीरं ते' यस्यात्मा शरीरम्, यस्य पृथिवी शरीरम्
आदि श्रुतियों के अनुसार यह चितचिद् जगत् परात्पर ब्रह्म
विश्वकर्मा राम का शरीर है । कर्तृत्व के लिये सभी दर्शन तीन
बातों को अत्यन्त आवश्यक मानते है–१ ज्ञान, २ चिकीर्षा और
३ प्रयत्न । इनमें इन तीनों के लिये अधिष्ठान (अधिकरण,
आश्रय या आधार) की आवश्यकता है । ज्ञान का आश्रय आत्मा
है । ज्ञानाधिकरणमात्मा त. स. आत्माश्रयः प्रकाशः पदार्थ चन्द्रिका
चिकीर्षा का आश्रय मन है–'मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने
वा. रा. ५।११।४२। संकल्पः कर्म मानसम् अ. को. १।५।२।'
'मनः सर्वेन्द्रियप्रवर्त्तकम् तं. भा. प्रयत्न का आश्रय शरीर है ।
चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम् न्या. सू. १।१।११।' बिना शरीर
के आश्रय से चेष्टा (प्रयत्न) नहीं हो सकती । विशिष्टाद्वैत वेदा
न्त में अधिष्ठानं शरीरम्' कहा गया है । यह चिदचित् जगत्
विश्वकर्मा राम को चेष्टाश्रय वा शरीर है । श्रुति ने कहा है
ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् शु. य. ४०।१' अतः
विश्वकर्मा राम का इस विश्व (जगत्) के साथ अभिव्यापक
अधिष्ठानत्व है । इसी के विषय में प्रकृत मन्त्र में प्रश्न (जि-
ज्ञासा) हैं कि इस विश्व का अधिष्ठान (आश्रय) क्या था ?
एवं अधिष्ठान का तात्पर्य उपादानसे भी हो सकता है । इस
प्रश्नात्मक मन्त्र का विस्तार श्वेताश्वेतरोपनिषद् में इस प्रकार है–
"किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवामि केन क्च सम्प्रतिष्ठा
अधिष्ठिताः केन सुखे तरेषु वर्तामहे ब्रह्म विदो व्यवस्थाम् ॥
कालः स्वभावो नियतिर्य दृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्या
संयोग एषां न त्वात्मभावादात्माप्यनीशः सुख दुःख हेतोः ॥
श्वे० उ० १–२॥"

इस प्रकार इस मन्त्र में सृष्टि विज्ञान के विषय में जिज्ञासात्मक प्रश्न है। जिसका उत्तर अग्रिम मन्त्र में दिया गया है इस मन्त्र में विश्व चक्षा पद से विश्वकर्मा राम को बिश्व का देखभाल करने वाला विश्व द्रष्टा भी कहा गया है।

३

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥

शु. य. १७।१९=ऋ. १०।८१।३=अथर्व. १३।२।२६
=तै. सं. ४।६।२४=श्वेताश्वर ३।३= तै. आ. १०।१।३॥

विश्वतः—सर्वतः, पूर्णतः, अन्यूनतः।

चक्षुः—रूपग्राह्येन्द्रियम चक्षुः, दर्शनेन्द्रियम्। मन्त्र २ में चक्षु पद की व्याख्या देखें। इस विश्वकर्मा के चक्षु से ही जगच्चक्षु सूर्य (सूर्यो आत्मा जगदश्चक्षुश्च-ऋ...) उत्पन्न हुआ (चक्षोः सूर्यो अजायत शु. य. ३१।१२). चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः चक्षुर्धाता दधातु नः॥ चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यः तनूभ्यः। सं चेदं वि च पश्येम॥ सुसन्दृश त्वा वयं प्रति पश्येम सूर्य। विपश्येम नृचक्षसः। ऋ. १०।१५८।३-५।'

उत उत प्रश्ने वितर्कें स्यात् उताप्यर्थं विकल्पयोः—वि०। उताप्यर्थं विकल्पयोः अ. को.। अपि सम्भावना प्रश्न शङ्का गर्हा समुच्चये मे०।'

विश्वतः—संवितः।

मुखो—मुखं निःसरणे वक्त्रे प्रारम्भोपाययोरपि मे०। मुखं निः सरणम् अ. को. २।२।१९। वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्—अ. को. २।६।८९ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्- ऋ. १०।९०।१२। मुखादग्निरजायत शु. य. ३१।१२। मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च—ऋ. १०।९०।१३।"

विश्वत=सर्वतः ।

वाहुः=वाहो युग्मं मनो वाहः प्रवाहो वाह उच्यते । वाहो माया विशेषश्च वाहो बाहुरिति स्मृतः ॥ अने० ११॥ भुज बाहू प्रवेष्टो दोः स्यात् अ. को. । बाहू प्रयत्ने (भ्वा०) बबाहे । बाहू राजन्यः कृतः-शु. य. ३१।११

उत-प्रश्ने, वितर्के, विकल्पे,

विश्वतः-सर्वतः ।

पात्-पादो ब्रध्ने तुरीयांशे शैल प्रत्यन्त पर्वते । चरणे च मयूखे च- मे० । पादारश्म्याङ्घ्रि तुर्योंशाः-अ. को. । पादः पदङ्घ्रिश्च रणोऽस्त्रियाम् । पत गतौ+घञ् (भावेः पा. ३।३।१८) घात । 'पद्भ्यां शूद्रो अजायत शु. य. ३१।११। पद गतौ । पादोऽस्य विश्वाभूतानि शु. य. ३१।.... ।

सं-सम्यगर्थे च सं शब्दो दुष्मायोगो निवारणः-न्या. मे. । सम् कल्याणे सुखे सन्तु शोभनार्थ समार्थयोः-मे० ।

बाहूभ्याम् तृतीया द्विवचन । तृतीया विभक्ति इसके करणत्व (साधकतमं करणम्) करणे तृतीया) का निरूपक एवं द्विबचन विश्व कर्मा के द्विभुजत्न का प्रतिपादक है जो राम का वाचक है ।

धमति ध्मा शब्दाग्नि संयोगयोः (भ्वा०) धमति । वर्तमान लट्-पा० ३।२।१२३। वर्तमान क्रिया वृत्तेर्धातो र्लट् स्यात् । वर्त मान किसी प्रारम्भ किये हुए कर्म का अविराम (जारी होना) सूचित करता है-प्रवृत्तस्याबिरामे शासितव्या भवंती ।' प्रकृति की नित्य व्यबस्थाएं और नियम आदि शाश्वत सत्य का बोध लट् के द्वारा होता है । इसका आवरामत्व इसका सम्बन्ध राम के साथ स्थापित करता है । लटो वर्त्तमानत्वम् ।

सं-उपर व्याख्या देखें ।

पतत्रैः तप ऐश्वर्ये वा पत इति व्यत्यासेन पाठान्तरम् । द्युत द्यामनि युतः पत्यमानः' तप धातोस्तकार पकारयोः क्रम व्य-

व्यासेन 'पत्' ऐश्वर्यं वा इति पाठान्तरमित्यर्थः । एवं व्यत्सासेन पाठ प्रयोग दर्शयति । ऐश्वर्येण त्रामन्त इति षतत्राः । पत्लृ गतौ (भ्वा०) पवनात् त्रायंते इति पत्त्राः ।

द्यावा–भूमी इसकी व्याख्या मन्त्र २ में देखें । द्यावा (स्वर्ग) भूमि (पृथिवी) दोनों की ।

जनयन=जानी प्रादुर्भावे (दिवा) प्रकृतिभूतधात्वर्थकर्त्ता शतृ-ज्ञानचोः धात्वेर्थजन्यफलवान् कर्मशानचोऽर्थः । शत्रादीनां कर्त्ताबाच्यः ।

देव=दिवु क्रीडा विजुगीषा व्यजिहार वति स्मृति मोह मद स्वप्न कान्ति गतिषु (दिवा) । देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थाने भवतिवा–निरुक्त । देवः=रामः) ('दिवु क्रीडायाम दीव्यति क्रीडति इतिदेवः रमु क्रीयायाम् रेमे क्रीडति इति रामः । समानार्थकः एकार्थकः ।' देवो दानात् राति ददाति । इतिरामः । एकार्थकः देवः । द्युस्थाने भवति "ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता । ब्रह्मदेमूर्ध्वं तिर्यक् चांतरिक्षंव्यपोहितम् ॥ मूर्धानमस्य संसीव्या-थर्वा हृदय चयत् । मस्तिष्कदूर्ध्वः प्रेरयत् पवमानोऽधि शीर्षतः । तद् वा अथर्वणः शिरो देव कोशः समुब्जितः तत् प्राणोऽभि-रक्षति । शिरो अन्नमथो मनः । ऊर्ध्वोनु सृष्टास्तिर्यङ्नु सृष्टाः सर्वादिशः पुरुष अबभवां पुरं यो ब्रह्मणो वेदं यस्याः पुरुष उच्यते । यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम् । तस्मै च ब्रह्म च ब्रह्मा-श्च चक्षुः प्राण प्रजां ददुः ॥ न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा । पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्यः पुरुष उच्यते । अष्टचक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या । तस्यां हिरण्यमयः कोशः स्वर्गो ज्यो-तिषावृतः । तस्मिन् हिरण्य कोशे त्र्यरे त्रिपतिष्ठित । तस्मिन् यद् यज्ञमात्मन्वत् तद् वैब्रह्म बि ो विदुः । प्रभ्राजमालां हरिणीं यशसा संपरीवृताम । पुरं हिरण्यमयीं ब्रह्मां विवेशापराजिताम् ।अथर्व०। १०।२।२।३३।' इन वेद मन्त्रों में ब्रह्मराम का स्पष्ट वर्णन है,

जिन्में इन्हें द्युलोकवासी कहा गय है जिससे 'देवः द्युस्थाने भवति' निरुक्त' के अनुसार देव और रामपद एकार्थक और एक ही सिद्ध होते हैं। पुनः 'दिवु विजिगीषायाम्' और उक्त अथर्व मन्त्र 'अपराजिताम् 'से देव पद राम का बोधक सिद्ध है। उक्त वेद मन्त्र का 'हिरण्यमयः कोशः, पुरं हिरण्यमयीं' पद निरुक्त के हिरण्यं कस्माद्? हितं रमणं भवतीति वा हृदय रमणं भवतीति वा अर्थात् लाभकारी रमणीय (सुन्दर) होता है और हृदय को रमणीय (प्रिय) लगता है। इसलिये इसे हिरण्य कहते हैं। रमण पद इसका राम से सम्बन्ध जोडता है? और अयोध्या दिव्य धाम हिरण्यमय क्यों कहा गया है? क्योंकि वहां हित रमण और हृदय रमण राम निवास करते हैं। इस प्रकार प्रकृत मन्त्र का देव शब्द राम का वाचक है।) लोकवत्तु लीला कैवल्यम्-ब्र.सू.। कारं कारमलौकिकाद्भूतमय कृत्वा जगत् क्रीडंति। न्या.कु. यह कार्य रमु क्रीडायाम धात्वर्थ से राम के लिये ही पूर्णतः निष्पन्न है।

६ एकः एकाकीत्वेक एककः-अ.को. एक मुख्यान केवलः-अ. को. ३।३।१६ (प्रधान, अन्य, केवल प्रथम अङ्क) ' एकः पदः राम का वाचक है। लोक व्यवहार में भी लोक गणना क्रम में एक संख्या के लिये राम शब्द का प्रयोग करते हैं और एक दो, तीन नहीं कहकर राम, दो, तीन आदि कहते हैं। रमते सर्व भूतेषु स्थावरे चरेषु च। अन्त राम स्वरूपेण यश्च रामेति कथ्यते। एक० पु०। एवं रमन्ते योगिनो यस्मिन् सत्यानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते। श्रीरामतापनीयोपनिषद्। 'एको देवः सर्वभूतेषु गूढ श्वे० उ० ६।११। देवः रामः यदेकं यत्परं यदनन्तं चिदात्मकम। यदेकं लोके तद्रूपं चिन्तयाम्यहम्। श्रीरामस्तवराजः। श्लोक २४।, 'विश्वं जातं यतोऽद्धायदवति मखिलं लीयते यत्र चान्ते' सूर्यो यत्तेजसेन्दु सकलमविरतं भास-

यत्येतदेषः। यद्भीत्या वाति वातोवनिरपि सुतलं याति नैवेश्वरोज्ञः साक्षी कूटस्थ एको बहुशुभगुण वानव्ययो विश्वभर्ता श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर श्लोक १।८।' जेहि सृष्टि उपायी त्रिविध बनाई। संग सहाय न दूजा।' आदि से एक पद यहां अद्वितीय, सर्वविलक्षण, सर्वव्यापक विश्वकर्मा श्रीराम के लिये प्रयुक्त सिद्ध है।

प्रकृत मन्त्र का संक्षिप्त अर्थ है कि विश्वकर्मा राम के दृष्टि वचन या वक्त्र, दोनों हाथ (प्रयत्न करण) एवं चरण सभी जगह, सर्वव्यापक हैं। वे विश्वकर्मा राम अपनी दोनों भुजाओं से सम्यक् प्रकारसे यज्ञाहुति करता है (धमा शब्दाग्नि संयोगयोः) अर्थात् सृष्टिकार्य का प्रयत्न करता है। बाहु प्रयत्ने) यानी करण कारक और प्रयोज्यकर्त्ता रूप दोनों बाहू हैं। सम्यक प्रकार से देवः रामः स्वर्ग और भूमि दोनों को उत्पन्न कर उसकी रक्षा करते हैं। वे एकः राम है। अद्वितीय, सर्वव्यापक, सर्वविलक्षण हैं।

इस प्रकार इस मन्त्र में जगत्कर्तृत्व के प्रकरण में अतिस्पष्ट शब्दों में देवः दीव्यति क्रीडतिरमते इति देवः रामः एवं 'एकः रामः' द्वारा राम का प्रतिपादन किया गया है।

४

किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस-
यतो द्यावा पृथिवीनिष्ट तक्षुः।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु-
तद्यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ॥
शु. य. १७।२० ऋ. १०।८१।४॥

किं स्विद् प्रश्न, वितर्क। इसकी व्याख्या मन्त्र २ में देखें। वर्न-वनं सलिल कानने अ. को.। वनं नपुंसकं नीरे निवासालय कानने-मे०। वन शब्दे। वन सम्भक्तौ।

क–किं सर्वनाम का प्रथमा एक वचन।
उ–उ सम्बोधनरोषोक्त्योरनुकम्पानियोगयोः–मे०
स–स ईश्वरः–एकाक्षर कोष। तद् सर्वनाम का पुल्लिग प्रथमा एक वचन। पुल्लिग सगुण साकार का बोधक है।

वृक्ष–वृक्ष वरणे। तैत्तिरीय ब्राह्मण में इस प्रकृत प्रश्नात्मक मन्त्र का उत्तर इस प्रकार दिया गया है–"ब्रह्म तद्वनं ब्रह्म स वृक्ष आस, यतो द्यावा पृथिवी निष्ट तक्षुः। मनीषिणो मनसा प्रब्रवीनि वो, ब्रह्माध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्।' अतः वृक्ष पद उपादान ब्रह्म श्रीराम का ही बोधक है। संसार विटप नमामहे रा॰ च॰ मा.। श्रीरामस्तवराज श्लोक ७४ में राम का एक नाम' कल्प वृक्ष' पठित है। श्रीराम प्राप्ति पद्धति में लिखा है–"कल्प वृक्ष तले चास्ति साकेते ब्रह्म वेश्मनि। सुवर्ण मण्डपे यत्र भासुरा रत्न वेदिका॥ रत्न सिंहासनं यत्र वर्तते सूर्य सन्निभम्। विशाल कमलं दिव्यं सहस्त्र दल शोभितम्। अधः स्थिते वितानस्य तत्र सिंहासने वरे। आसीनं परमं रम्यं श्रीरामं सीतया सह। श्लो० ३६–३८। वृक्ष का अर्थ वेदों में धनुष भी होता है–'वृक्षे वृक्षे नियतामीमयद् गौस्ततो वयः प्रपतान् पुरुषादः (ऋ० १०।२७।२२) वृक्षे वृक्षे धनुषि धनुषि। वृक्षो व्रश्चनात्। वृत्वा क्षां तिष्ठतीति वा। क्षा क्षियते निवास कर्मणः। नियतामीमयद् गौः शब्दं करोति। मीमयतिः शब्द कर्मा। ततो वयः प्रपतन्ति पुरुषानदनाय। विरिति शकुनि नाम, वेतेर्गति कर्मणः अथापीपु नामेह भवत्येतस्मा देव॥ निरुक्त २।२।'

वृक्ष शब्द की अनेक प्रकार से निर्वचन करते हुये यास्क कहते हैं कि वृक्ष शब्द 'ओ व्रश्चू छेदने (तुदा०) वृश्चति' धातु से बनता है। छेदन की क्रिया से सम्बन्धित होने के कारण वृक्ष कहा जाता है–वृक्षो व्रश्चनात्। पुनः कहते हैं कि वृक्ष शब्द वृ वृत्वा (वृतु वर्तने) क्षां तिष्ठति। वृक्ष आवृत (घेर) कर

स्थित रहने वाले को कहा जाता है । पुनः कहते हैं—क्षा क्षियते निवास कर्मणः अर्थात् क्षि निवास गत्योः (तुदा०) के अनुसार वृ वृत्वा+क्ष निवास करता है इसलिये वृक्ष कहा जाता है । पुनः कहते हैं नियताम् (प्राप्यताम्)+मीमयद् गोः (शब्द करोति) मीमयति शब्द कर्मा । शब्द करता है इसलिए वृक्ष कहा जाता है । पुरुषों को भक्षण करने के लिये विः शब्द पक्षी वाचक है वि शब्द वी गति व्याप्ति प्रजन कान्त्य सनखादनेषु भ्वा०) धातु से बनता है, वेतेर्गति कर्मणः । वि गत्यर्थक है । इसलिये इषु (वाण) के लिये विः शब्द का प्रयोग होता है । इस प्रकार यास्क के निर्वचन से वृक्ष पद धनुष एवं शब्दोपादक तत्त्व का वाचक सिद्ध होता है । श्रुति में कहा गया है— "प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्य मुच्यते । अप्रमत्तन वेधव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ।। मुण्डकोपनिषद् २।२।४।' शब्द ब्रह्म वाद के अनुसार ॐ कार से ही सृष्टि हुई है । धनुष का आकार (०) भी ॐ कार अक्षर के आकार का होता है और उपरोक्त निरुक्त वचन में धनुष को शब्द कर्ता (शब्दं करोति) कहा गया है । श्रीरामजी का आयुध धनुष बाण है और वह चेतन तथा सर्व कर्म समर्थ है "प्रत्यूह व्यूहभङ्गं विदधदुस बलः शक्तिमान्सर्वकारी, भूरिश्रेयः प्रतापो मुनिवर निकरैः स्तूयमानो विमानः । रक्षोदैत्यादि नाशी क्षुभितजल निधिर्लोक जिल्लोक मान्यो, धन्यो नो मङ्गलौघं सपति सुकुरुताद्राम शस्त्रास्त्र संघः ।। श्रीवै. म. भा १/३' इसी को लक्ष्य कर यहाँ प्रश्न किया गया है 'क उ स वृक्ष आस ।

आस अस गतिदीप्त्यादानेषु (भ्वा०)

यतो यस्मात कारणात् (उपादानात्)

द्यावा पृथिवी स्वर्ग और भूमि । देखे मन्त्र ३ की व्याख्या ।

निष्ट तक्षुः—तक्ष तनू करणे (श्वा०) तनू करणे तक्षः—पा० ३।१।७६।' तक्ष त्वचने । त्वचनं संवरणं त्वचो ग्रहणं च । पक्ष परिग्रहे इत्येके (भ्वा०) ।

मनीषिणो मननशालिनः ।

मनसा मनु अवबोधने । मन ज्ञाने । सुखाद्युपलब्धि साधनमिन्द्रियं मनः । तृतीया करणे ।

पृच्छतेयु=प्रच्छ जीप्सायाम् । 'पृच्छतेदु' इति ऋग्वेदेपाठः ।

तत्=सर्व नाम परोक्ष वाचक (तदिति परोक्षे विजानीयात्) कारण वाचक आनुमानिक पद तत् यत् । समुच्चय बोधक अव्यय । क्रिया विशेषण-'इसलिए' निगमन बोधक । यस्मादिति यतः ।

यत् सर्वनाम-'जो' । तस्मादिति ततः ।

अधि तिष्ठत्=अधि+ष्ठा (ष्ठा गति निवृत्तौ । तिष्ठति । लङ् (अनद्यतने लङ् पा० ३।२।१११) अनद्यतनभूतार्थ वृत्तेर्धातो र्लङ् स्यात् ।' छन्दसि लुङ् लङ् लिट् सर्वकालेषु ।। अधिस्या दधिकारे चापीश्वरे च निगद्यते ।। मे०।' अधि इत्युपरिभावमैश्वर्यं वा निरुक्त' अधिरूपरिभावे, उपरिभावश्च पठने नियम पूर्वकत्वम् ।

भुवनानि भुवनों को । देखे मन्त्र १ की व्याख्या ।

धारयन् डुधाञ् धारण पोषणयोः ।।

मन्त्र का संक्षिप्त अर्थ है- वह कौन सा वन था और कौन सा वृक्ष था जिस से संग्रहण निष्ठ विश्वकर्मा राम ने द्यावा और पृथिवी का निर्माण किया ? हे मनन करने वाले विचार शील विद्वानों । आप लोग अपने मनन साधनेन्द्रिय मनसे पूछे कि किसपर ऐश्वर्य भाव से (ईश्वर रूप से) नियम पूर्वक उपर स्थित होकर वह विश्वकर्मा सभी भुवनों (सम्पूर्ण विश्व) को धारण करता है ?

इस मन्त्रमें विश्व का उपादान एवं निमित्त कारण तथा अधिकरण कारण के विषय में जिज्ञासा है ।

उपनिषद् में ब्रह्मका एक नाम वन पठित है- 'तद्ध तद्वनं नाम तद्वन मित्युपासितव्यम् । स च एवं वेदाभि हैनं सर्वाणि

भूतानि संवाञ्छति ॥ केनो० उ. ४।६।' विष्णु सहस्रनाम में विष्णु (राम) का एक नाम वृक्ष श्लोक ७२ में पठित हैं। वृक्ष इवाचल तया स्थित इति वृक्षः–'वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक श्वे० उ० ३।९। इति श्रुतेः (शां. भा.)।

प्रकृत प्रश्नात्म मन्त्र के पूर्व ऋ. १०।७२।३–४ में कहा गया कि पूर्व समयमें असत से सत् उत्पन्न हुआ। इसके पश्चात् दिशायें उत्पन्न हुई और उसके पश्चात् वृक्ष उत्पन्न हुआ। वृक्षोंसे पृथिवी उत्पन्न हुई और पृथिवी से दिशायें उत्पन्न हुई–"देवानां पूर्वे युगे प्रथमेऽसतः सदजायत तदाशा अन्वजायन्त तदुत्तान पदस्परि।३। भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त।४।' ऋग्वेद के १०।३१।७–८ में यही प्रकृत प्रश्न पूछकर उत्तर दिया गया है–"किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावा पृथिवी निष्टतक्षुः। संतस्थाने अजरे इतऊती अहानि पूर्वीरुषसो जरन्त।७। नैता वदेना परो अन्यदस्त्युक्षा स द्यावा पृथिवी बिभर्ति। त्वचं पवित्रं कृणुत स्वधावान्यदी सूर्यं न हरितो वहन्ति।८।' वह कौन वन और वृक्ष है। जिसको उपादान लेकर विश्वकर्माने द्यू (स्वर्ग) और पृथिवीको बनाया। पुराने दिन एवं उषा स्तुति करते हैं और स्वर्ग तथा पृथिवी अजीर्ण हैं। इसके उत्तरमें कहा गया है कि तुम्हारा प्रश्न तो केवल द्युलोक और पृथिवी लोक विषयक है परन्तु केवल यही अन्तिम लोक नहीं हैं। इनके ऊपर भी और कुछ है। वह विश्वकर्मा प्रजा का निर्माता और स्वर्ग तथा पृथिवी को धारण करनेवाला है। सूर्य ने अश्वों को धारण नहीं किया वहाँ वह अपने शरीरको धारण किया–'न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः। यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम। श्रीमद्भगवद्गीता। न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति। मु.उ. २।२।१०।' इस प्रकार अथर्व वेदोक्त दिव्य धाम अयोध्या॰ श्री

अयोध्याधीश विश्वकर्मा राम ही इस विश्वके निर्माता एवं धारक हैं और यह अखिल विश्व उस दिव्य लोक के आधार पर ही आधारित है। वेदोंमें परमात्मा और जीवात्मा को वृक्षस्थ कह कर वर्णन है-'द्वा सुपर्णा सु युजा सखाया समान वृक्षं परिषस्व जाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति। यस्मिन्वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे। तस्य यदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद। ऋ. १।१६४ २०.२२ अथर्व० ९।९।२०-२१।' वृक्ष वरणे। वृक्ष अपने पार्श्ववर्ती को आच्छादित कर देता है। कहा जाता है कि प्रलय कालमें परमात्मा वटवृक्ष के पत्ते पर सोया हुआ झूला झूलता रहता है (वटस्य पत्रस्य पुटे शयानः।

इस मन्त्रमें विश्वके अधिष्ठान या उपादान के विषय में प्रश्न है अथवा विश्वकर्मा राम के धाम के विषयमें प्रश्न है और इसका उत्तर अग्रिम मन्त्र में है।

या ते धामानि परमाणि यावमा
या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः
स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥

शु.य. १७।२१ ऋ. १०।८१।५.

या=यद् स्त्रीलिङ्ग प्रथमा एक वचन 'जो'।

ते=युष्मद् षष्ठी एकवचन। षष्ठी सम्बन्धे। स्वस्वामीभाव सम्बन्ध, जन्य जनक भाव सम्बन्ध अवयवावयवि सम्बन्ध, स्थान्यः देश सम्बन्ध।

धामानि=धाम देहे गृहे रश्मौस्थाने जन्म प्रभावयोः-मे०।

परमाणि=परमं स्यादनुज्ञायामव्ययं परमं परे-मे०।

अवमा=निकृष्ट प्रतिकृष्टावरेफयाप्यावमाधमाः-अ को०।

मध्यमा=न्याय्येपि मध्यम अ.को. मध्यमं चावलग्नं च मध्य-मोऽस्त्री–अ. को. मध्यमेऽन्यवत्–मे० ।

विश्वकर्मन्=जगत्स्रष्टः ।

उत देखें मन्त्र ३ व्याख्या ।

इमा देखें मन्त्र १ में व्याख्या

शिक्षा शिक्षविद्योपादाने (भ्वा०) शिक्षते । शिक्षतिर्दान कर्मा । निरुक्त ३।२०) शिक्षेत्यादि श्रुतेरङ्गः । मर्त्यावतार खलु धर्म शिक्षणम् ।

सखिभ्यो अथ सख्य सखा सुहृत । सख्य साप्त प्रदीन स्यात् । अत्याग सहनो बन्धुः सदैवानुगतः सुहृत् । एकक्रियं भवेन्मित्रं समप्राण सखा स्मृतः ।' सखा मित्रं सहाये ना वयस्यायं सखी मता–मे० ।

हविषि=घृतमाज्य हविः सर्पिः–अ.को. । हवि र्होतव्य मात्रं च "सर्पिष्यपि नपुंसकम् ।

स्वधाव: स्वः स्यात् पुंस्यात्मनि ज्ञातौ त्रिष्वात्मीये धनेऽस्त्रि-याम् मे०, स्वः प्रत्य व्योम्नि नाके चापि मे०+धावु गति शुद्धयोः (भ्वा) धावति धावते । स्वधा=स्वाहादेव हविर्दाने श्रौषट् वौषट् स्वधा +व=वः सान्त्वने च वाते च वरुणे च निगद्यते–मे० ।

स्वयं स्वयमात्मा अ. को. ३।४।१६। आपसे आप मन्त्र ६ में व्याख्या देखें ।

यजस्व=यजदेव पूजा सङ्गति करण दानेषु (भ्वा०), लोट्–विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाऽधीष्ट सम्प्रश्न प्रार्थनेषु लिङ लोट् च ।। पा० ३।३।१६१–६२ ।"

तन्वं तनु विस्तारे, तनु श्रद्धोपकरणयोः ।

वृधानः वृधु वृद्धौ ।

मन्त्र का संक्षिप्त अर्थ है –हे विश्वकर्मा राम ! तुम्हारा जो उत्तम–मध्यम अधम (कारण सूक्ष्म स्थूल ब्रह्म चित्–अचित् ।

शरीर (चेष्टाश्रय. गृह (निवास घर) प्रकाश स्थान 'दिव्यलोक स्वर्गलोक भूलोक' अथवा भूआदिसप्तलोकोर्ध्व साकेत लोक, भूआदि सप्त मध्यलोक और पातालादि सप्तअन्धकारलोक (असूर्या नाम ते लोका' अन्धेन तमसा वृता:+शु.य. ४० ।...), जन्म (पूर्णावतार, आवेशावतार, अर्चावतार) । प्रभाव (सत्विगुण रजो गुणतमोगुण) धामों को बता दो । हे यज्ञग्राही विश्वकर्मा आप स्वयं यज्ञ कर अपने शरीर की वृद्धि या पोषण करते हैं ।

इस मन्त्रमें विश्वकर्मा के तीन प्रकार के शरीरों का प्रतिपादन है । यह कई प्रकारसे निष्पन्न होता है ? उत्तमदेह साकेत वा साकेतस्थ, मध्यमशरीर भूआदिसप्त ऊर्ध्वलोक वा ऊर्ध्वलोकस्थ, अधमशरीर अधोलोक वा अधोलोकस्थ । २. उत्तम शरीर साकेतस्थ, मध्यम शरीर विराट् ब्रह्माण्डस्थ (ब्रह्माण्डनिकाया निर्मितमाया, रोमरोम प्रतिवेद कहैं ।) अधम शरीर अवतारस्थ (मर्त्यावतारः खलु धर्मशिक्षणम्) 'मायावत् समयादयः—न्या. कु. २।२—यथा मायावी सूत्रसञ्चाराधिष्ठितं दासपुत्रं कृत्वा दासपुत्रकः ! घटमानय इत्यादि नियोज्य, घटानयन सम्पाद्य, बालकस्य व्युत्पत्तौ प्रयोजकस्तथेश्वरोऽपि प्रयोज्य प्रयोजक भावापन्नं शरीरद्वय परिगृह्य व्यवहारं कृत्वा तदानीन्तनानां शक्ति ग्राहयति । एवं घटादि सम्प्रदायमपि स्वयं कृत्वा शिक्षयति । तदिदमुक्तं 'मायावत् समयादयः इति । समयः शक्ति ग्रहः हरिदास वृत्तौ ।' परमेश्वर केवल वेदादि वचन से ही शिक्षा नहीं देता है अपितु अवतार धारण कर स्वयं करके दिखाके भी शिक्षा देता है । वह न केवल जगत्स्रष्टा अपि तु जगत् शिक्षक जगद्गुरु) भी हैं । वह शिक्षक ही नहीं प्रत्युत सखाभाव (मित्रभाव) रखनेवाला शिक्षक है और वह स्नेह (हविष) प्रेम की शिक्षा देता है हविः त्याग (त्याग) तथा अभ्युदय और निःश्रेयस की शिक्षा देता है और स्वयं त्यागकी व्यवहारिक शिक्षा देता है । विश्वकर्मा लौकिक इंजिन्यरिंग कालेज (अभियान्त्रि की महा विद्यालय) के प्रोफेसर

(अध्यापक) के समान शिक्षा देनेवाला है। किसी फैक्टरी (कारखाना) के अभियन्ता के समान केवल निर्माता नहीं। उसका यह विश्व शाश्वत नियमोंकी व्यवस्था है। विश्वकर्मा विश्व में पृथिवी आदि ग्रहोपग्रह, सूर्य, चन्द्रनक्षत्र आदि की रचना कर इसमें प्राणी वर्ग (उद्भिज, उष्मज, अण्डज, पिण्डज अथवा थलचर जलचर, नभचर) की रचना की जो वाइरस जैसे नेत्रों से नहीं दिख पडनेवाले अत्यन्त सूक्ष्मजीवों से लेकर ह्वेल जैसे महाविशाल काय शरीर यन्त्रो की रचना की जिनमें चक्षुरादि सभी ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों जीवनोपयोगी अङ्ग प्रत्यङ्गों की यान्त्रिक एवं बौद्धिक संरचना देखकर मानव बुद्धि चकराती है और विश्वकर्मा ने यज्ञात्मक सृष्टि प्रक्रियासे अपने आप (औटोमेटिकली) विश्व की रचना कर उसका विस्तार एवं अभिवृद्धि की। आधुनिक वैज्ञानिक किसी भी संयन्त्र के चालन के लिये उसमें इंधन (हविष) की आवश्यकता होती है। कोयला इंजिन में कोयला, पेट्रोल इंजिन में पेट्रोल, डीजिल इंजिन में, डीजल आदि इंधन डाले जाते हैं। इस विश्वरचना के निर्माण हेतु प्रथम प्रकृति के संयन्त्र में हवनकुण्ड में हविष (इंधन) की आहुति दी गई, जिससे पर्जन्यादि की उत्पत्ति होकर विश्व की रचना, संचालन एवं पोषणादि सम्पन्न हुआ।

इस मन्त्र में विश्वकर्मा राम के धामों का निरूपण है।

[६]

विश्वकर्मन्हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुतद्याम्।
मुह्यन्त्वन्ये अभितः सपत्ना इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु॥

शु.य. १७।२२ ऋ. १०।८१।६ साम० १५८९

विश्वकर्मन विश्वकर्ता विश्वकर्मा (विश्वकर्मा रामस्तवराज) हविषा घृतमाज्यं हविः सर्पिः—अ.को २।९।५२ स्नेहः। पूर्ण पिण्डीकृत भावः स्नेहः प्रेमः। वावृधानः वृधु वृद्धौ

(भ्वा०) ववृधे+शानच् (लटः शतृशानचा व प्रथमा समानाधिकरणे पा. ३।२।१२४।

स्वयं स्वयमात्मना अ.को. ३।४।१६। जहां कार्य के अतिशय सौकर्यको प्रकट करने के लिये कर्तृव्यापार अविवक्षित हो वहाँ कर्म आदि अन्य कारक कर्ता हो जाते हैं। यहाँ कर्म कर्ता का ज्ञापक है।

यजस्व यजदेवपूजा सङ्गति करण दानेषु (भ्वा). यहां देवपूजा रामार्चन (दीव्यति क्रीडति इति देवः रेमे क्रीडति इति रामः) विश्वक्रीडा विश्वरचना लीला वा विश्व लीला। सङ्गतिकरण सं सम्यक् प्रकारेण, गति व्यापारः। सम्यगर्थे सं प्रोक्तः दुष्प्रयोग विवर्जितः। इस प्रकार निर्दुष्ट प्रकार से सृष्टि रचना व्यापार करण अथवा 'सङ्गतं' हृदयङ्गमम् अ.को. समीचीन और प्रासङ्गिक कार्यकरण+लोट् देखें व्याख्यामन्त्र ५ में।

पृथिवीम्=पृथ्वी भूमौ महत्याञ्च मे०। भूमि या महत् (प्रकृति) कर्मणि द्वितीया प्रोक्ता। फलाश्रयः कर्म। मन्त्र २ की व्याख्या देखें।

उत=उताप्यर्थ विकल्पयोः अ.को। उत्तं स्यूतमुतं चेति त्रितयं तन्तु सन्तते अ.को. ३।१।१०१। देखें व्याख्या मन्त्र३ में।

द्याम=द्यौः स्त्रीयां स्वर्गे च गगने दिवं क्लीबं तयो स्मृतम मे०। सुरलोको द्यौ दिवौ द्वे स्त्रियां क्लीबे त्रिविष्टपम् अ.को.। कर्मणि द्वितीया प्रोक्ता। फलाश्रयः कर्म देखे मन्त्र २ में व्याख्या

मुह्यन्तु मुह वैचित्त्ये। वैचित्त्यमविवेकः (दिवा०)+लोट्

अन्ये भिन्नार्थ का अन्यतर एकस्त्वोऽन्यतरादपि अ.को. ३।१।८२। अन्योऽसदृशेतरयोर्य्यः स्यात् स्वामि वैश्ययोः मे.।

अभितः-'अभि' इत्यासुखम नि०। अभितः सामुख्यतः।

अभितः शीघ्र साकल्य सम्मुखोभयतोऽन्तिके—मे० । समीपोभयतः शीघ्र साकल्याभिमुखेभितः—अ.को. ३।३।२५६। सर्वतः ।

सपत्ना=रिपो वैरि सपत्नारि द्विषद् द्वेषिण दुर्हृदः । द्विड विपक्षा हितामित्रदस्यु शात्रव शत्रवः अ.को. २।८।१०–११।'

इह=अत्र । स्थान वाचक ।

अस्माकम्—अस्मद सर्वनाम का षष्ठी बहुवचन । चतुर्विध सम्बन्ध का ज्ञापक देखें विद्यते मन्त्र की व्याख्या ।

मघवा—'मह पूजायाम्' । 'मघि गत्याक्षेपे । आक्षेपो निन्दा, गतौ गत्यारम्भे च इत्यन्ये, मघि कैतवे च, कैतव वञ्चना । इन्द्रो मरुत्वान्मघवा बिडौजाः पाकशासनः । वृद्धश्रवा सुनासीरः पुरुहूतः पुरंदरः । जिष्णुर्लेखर्षभः शक्रः शतमन्युर्दिवस्पतिः । सुत्रामा गोत्रभिद्वज्री वासवो वृत्रहा वृषा । वास्तोष्पतिः सुरपतिर्बलरातिः शचीपतिः । जम्भभेदी हरिहयः स्वाराण्नमुचि सूदनः । संक्रन्दनो दुश्च्यवनस्तुराषाण्मेघवाहनः । आखण्डलः सहस्राक्ष ऋभुक्षाः—अ.को. १।१।४१–४४ । मघो दीपान्तरे मेघो मुस्ताजलदयोः पुमान् ।

सूरिः=षु ऐश्वर्य दीप्त्योः (तुदा०) विद्वान् विपश्चिद्दोषज्ञः सन्सुधीः कोविदो बुधः । धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः संख्यावान् पण्डितो कविः । धीमान् सूरिः कृती कृष्टिर्लब्धवर्णो विचक्षणाः । दूरदर्शी दीर्घदर्शी—अ.को. २।७।५–६ । प्रथमा ।

अस्तु—अस गति दीप्त्यादानेषु (भ्वा०), अस भुवि (अदा०)+लोट् ।

इस मन्त्रका संक्षिप्त अर्थ है—हे विश्वकर्मा राम आप द्यावा पृथिवी देवलोकों एवं मनुष्य लोकोंको दोनों में अपने आप यज्ञ करके उस हविष (स्नेह) से वर्द्धमान हो । विपक्षी सर्वतः मोहित (चकित) हों । यहाँ हमलोगों को वह पूजनीय 'विश्वकर्मा ज्ञान प्रदाता हो । इसमें विश्वकर्मा राम की सर्वव्याप्ति आदिका निरूपण है ।

[७]

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम ।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥

शु.य. १७।२३–शु.य.८।४५–ऋ. १०।८१।७।

वाचस्पतिं–वच्परिभाषणे (अदा० १०६३) चुरा० १८४३) पत ऐश्वर्ये ११५९ 'बृहस्पतिः सुराचार्यो गीष्पतिर्धिषणो गुरुः । 'जीवआङ्गिरसोवाचस्पति श्चित्रशिखण्डिजः । अ.को. १।३।२४।' स्वामीत्वीश्वरः पतिरीशिता अधिभूर्नायको नेता प्रभुः परिवृढोऽधिपः अ.को. ३।१।१०–११ ।' द्वितीया वाचो विद्यायाः पतिः वाचस्पतिः । ' वाक्यतिं वरदवाच्यं–३१ रामस्तवराज ।

विश्वकर्माणम्=विश्व (जगत्=अखिल+कर्माणम् (कर्म क्रिया) द्वितीया ।

ऊतये=ऊतं स्यूतमुतं चेति त्रितयं तन्तु सन्तते अ.को. ३।१। १०। उताप्यर्थ विकल्पयोः अ. को. ३।३।२४३ समुच्चय प्रश्न विकल्प वितर्क । तन्तु निर्मित तादर्थ्यें सम्प्रदाने चतुर्थी स्यात् ।

मनोजुवं=मनो जवति गच्छति जानाति । मनोहुतम ।

वाजे=वाजो निःस्वन पक्षयोः । वेगे पुमानथ क्लीबे धृतयज्ञान्नवारिषु मे० ।'

अद्या=अद्यात्राहि+अ.को. ३।४।२०

हुवेम=लोट् उ.पु. ब.व. हुदानादनयोः १०८३। दानं चेह प्रक्षेप ।

सं=सा विश्वायुः स विश्वकर्मा सा विश्वधाया शु.य. १।४।' स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्व । यत्र देवा अमृत मानशानास्तदीये धामन्नध्यैरयन्त । शु.य. ३२।९ सनः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । संचस्वानः स्वस्तये शु.य. ३।२४। स विश्वकर्मा ।

नो. अस्माकम् । षष्ठी ब.व. चतुर्विध सम्बन्ध

तरह तरह के फल पुष्प पत्तो, पशुपक्षी, नदी, पहाड,झरना, आदि झभी एक से एक सुन्दर 'जहाँ जाय मन तहईं लोभाइ' है। अतः विश्वकर्मा साधुकर्मा है। (८) विश्वकर्मा साधुओं का परित्राण करने वाला हैं–'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे। गी॰ ४।८। (७) अतः वह साधुओं का त्राता होनेसे साधुकर्मा है। साधुओं का (शिष्टजनों) के आचार को धर्म का मूल कहा गया है–'वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्। आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टि रेव च। मनु.२।६।' विश्वकर्मा स्वयं लोकसंग्रहार्थ अपने शिष्टकर्म (साधुकर्म) करके आचार का स्थापको–'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते। न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन। नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि। यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रि तः। मम वर्त्मानु वर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः। उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्। संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः। गी॰ ४।२१–२४।' अतः वह आचारका आदर्श कर्म मूर्तिरूप होने से साधु (आचार श्चैवसाधूनाम्) कर्मा है। (१०) इस प्रकार वह न केवल आचार का उपदेश देनेवाला है अपि तु स्वयं आचरण करने वाला होने से साधु (आचार्य) कर्मा है–'आचिनोति च शास्त्राणि आचारे स्थापत्यपि। स्वयमाचरते यस्तु तमाचार्यं प्रचक्षते।' (११) साधु शब्द का अर्थ वैश्य भी होता है। 'ऊरू तदस्य यद्वैश्यः–शु.य. ३१।११।' के अनुसार उरु (हृदय या पेट) वैश्य (साधु) है और इस पेट और हृदय का कर्म साधु कर्म जिस प्रकार पेट आहार का पाचन कर उससे त्याज्य मलों (मल मूत्र स्वेद आदि) का वहिष्कार और पोषक तत्त्वों (रक्तादि) का निर्माण कर सम्पूर्ण शरीर के समस्त अङ्ग प्रत्यङ्गों का पोषण कार्य करता है उसी प्रकार विश्वकर्मा अखिल ब्रह्माण्ड का भरण

पोषण करते हैं । अतः वह साधु (शौर्य-उदर) कर्मा है (१२) पुनः सम्पूर्ण प्रेरणाका स्थान हृदय है और विश्वकर्मा हृदयमें स्थित होकर शुभ प्रेरणा करता है-'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति । भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया । तमेव शरणं-गच्छ सर्वभावेन भारत । तत्प्रसादात्परां शान्ति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्' गी. १८।६१-६२ । सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च । वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्योवेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् गी. १५।१५। ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्या विष्ठितम् ।गी.। १३।१७।' अतः उर प्रेरक होने से वह साधुकर्मा है । (१३) विश्वकर्मा का सभी कर्म स्वतः सिद्ध (स्वयं सिद्ध तव काज) होनेसे वह साधु (सिद्ध) कर्मा है । (१४) वह परंसिद्धि (मोक्ष) देने वाला होने से (साधु (परंसिद्धि प्रदाता) कर्मा है । (१५) उसके सुगन्धसे सभी सुगन्धित होते हैं, उसके प्रकाश से सभी प्रकाशित होते हैं, उसके प्रभावसे ससी प्रभावित होते हैं अतः वह साधुकर्मा-(कबिरा संगति साधु की ज्यों गन्धी की वास । जो कछु गन्धी दे नहीं, तौ भी वास सुवास ।) है । इस प्रकार वह सर्व प्रकार से साधु कर्मा सिद्ध है ।

[८]

विश्वकर्मन्हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम् ।
तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत् ॥
शु. य. १७।२४=८।४६

विश्वकर्मन्=जगत्कर्मा विश्वकर्मा (राम) । विश्वकर्मार्कसुर-शिल्पिनोः अ. को. ३।३।१०५। षुर ऐश्वर्यदीप्त्योः । सुरति ।

हविषा= घृतमाज्यं हविः सर्पिः-अ. को. २।७।५८' तृतीया एक वचन ।

वर्धनेन=वर्धँ छेदन पूरणयोः (चुरा०)+ल्युट्+तृतीया एकवचन ।

त्रातारम्=त्रैङ् पालने (भ्वा०)+तृच+द्वि. एकवचन ।

इन्द्रम्=इदि परमैश्वर्ये, परमैश्वर्यम् परमेश्वरी भवनम् । शब्दादि विषयोः पञ्च प्रसिद्धा इन्द्र संज्ञया । श्रेष्ठ इन्द्रः समाख्यातो देव राडिन्द्र उच्यते । अने० ध्व० मं, ४९।' 'इन्द्रः शक्रादित्य भेदे योग भेदान्तरात्मनि-मे० ।' यास्काचार्य ने इन्द्र शब्द के चार अर्थ किया है-

ईश्वर, देव, ज्ञान, विद्युत । द्वितीया एकवचन ।

अकृणोः=डुकृञ् करणे+लङ् मध्यमपुरुष एकवचन ।

अवध्यम्-वध्यः शीर्षच्छेद्य इमौ समौ अ. को. ३।१।४५। हन् हिंसागत्योः (अदा०)+तव्य (तव्यत्तव्यानीयरः-पा० ३।१।९२) वध्य हन्तुंयोग्यः, गन्तुं योग्यः । +द्वितीया एकवचन ।

तस्मै-तद् चतुर्थी एकवचन । 'तदिति परोक्षे विजानीयात् । तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या (वा०) । प्रयोजन में चतुर्थी होती है । कर्म के द्वारा 'जिसे सन्तुष्ट किया जाता है अथवा क्रिया के द्वारा जो अभिप्रेत हो वह सम्प्रदान है-'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्-पा० १।४।३२, क्रियया यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् (वा०) अथवा आगे 'समनमन्तपद है, इसलिए-'नमः स्वरितस्वाहास्वधाऽलंवषड् योगाच्य-पा० २।३।१६' के अनुसार चतुर्थी प्रयुक्त है।

विशः-द्वौ विशौ वैश्य मनुजौ-अ. को. ३।३।२१४, विश् प्रवेशने (तुदा०) विशति इति विशः ।

समनमन्तः-समं सर्वम् । विश्वमशेषं कृत्स्नं समस्त निखिलाखिलानि निः शेषम् । समग्र सकलं पूर्णमखण्डं स्यादनून के । अ. को. ३।१।६४। वाच्यलिङ्गाः समस्तुल्यः सदृक्षः सदृशः सदृक् । साधारणः समानश्च-अ. को. २।१०।३१। समनमन्त-सम+णम् प्रह्वत्वे शब्दे च (भ्वा०) नमति+शतृ (लटः शतृ शानचाव प्रथमा समानाधिकरणे-पा० ३।२।१२४)+प्रथमा एकवचन ।

पूर्वी:-पूर्वे तु पूर्वजेषु स्युः पूर्वः प्रागाद्ययोस्त्रिषु-मे० ।' पूर्वो-ऽन्यलिङ्गः प्रागाह पुं बहुत्वेऽपि पूर्वजान अ. को. ३।३।१३४।

अयम्-इदम् पुल्लिग प्रथमा एकवचन । इदमस्तु सन्निकृष्टम ।

उग्रो-उग्रः शूद्रासुते क्षत्राद्रुद्रे पुंसि त्रिषूत्कटे-मे० ।

विहव्यो='सम्' इत्येकी भावम् । वि इत्येतस्य प्रातिलोम्यम । निरुक्त । वि-विविध वि-विशेष । हु दानादन योः (जुहो०) दानमिह प्रक्षेपः)+तव्य ।

यथा-सदृशे निश्चयेऽपि स्यात् यथा तुल्यार्थमानयोः-मे० ।

असत्-असभुवि (अदा०) भवनं भूः सत्तायाम्+लङ प्रथम पुरुष एकवचन ।

इस मन्त्र का संक्षिप्त अर्थ है कि विश्वकर्मा (ऐश्वर्य और दीप्तिमान् शिल्पी (इञ्जिनीयर) सूर्य (जगदोत्पादक) हविष (घृत माज्यं हविः सर्पिः) से छेदन और पूरण के द्वारा पालन पोषण करनेवाले परमैश्वर्य शाली देवराट् इन्द्रको अथवा जीवात्माको अविनाशी बनाया । इस अनादि सर्व प्रकारसे हवनीय उत्कट जिस प्रकारका था उसके लिये मनुष्य सर्व प्रकार से शरणागति ग्रहण करते हैं ।

इस मन्त्र में विश्वकर्मा रामकी शरणागति ग्रहण का प्रतिपादन है ।

[९]

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने ।
यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिद् द्यावा पृथिवी अप्रथेताम् ॥

शु. य. १७।२५-ऋ. १०।८२।१

चक्षुषः=लोचनं नयनं नेत्रमीक्षणं चक्षु रक्षिणी । दृग्दृष्टि-अ. को २।६।९३। चक्षिङ व्यक्तायां वाचि । अयं दर्शनेऽपि । गूढार्थस्य स्पष्ट प्रति पदर्यार्थ विवरणे इत्यर्थः । विचक्षणः प्रथमन् ।

विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः । पञ्चमी एकवचन । पञ्चम्यन्तं लिङ्ग प्रतिपादकं हेतुः–त. स. दी. ।

पिता–देखे व्याख्या मन्त्र १ में । त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो–सा....... ।' माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः । पितासि लोकस्य चराचरस्य । उत्पादकः । जनकः । तातस्तु जनकः पिता अ. को. २।६।२८।

मनसा–मनसचित्ते मनीषायाम्–मे० ।' चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः । अ. को. १।४।३१। मन ज्ञाने । मनु अव बोधने । मननसाधनमिन्द्रियं मनः । करणे तृतीया । साधकतमं करणम् ।

हि–हि हेतावधारणे–अ. को. ३।३।२५७। हि पादपूरणे हेतौ विशेषेऽप्यवधारणे । प्रश्ने हेत्वपदेशे च सम्भ्रमासूययोरपि ।मे०।

धीरो–विद्वान् विद्वान् विपश्चिद्दोषज्ञः सन् सुधीः कोविदोवुधः धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः संख्यावान् पण्डितो कविः । धीमान् सूरिः कृती कृष्टिर्लब्धवर्णो विचक्षणः । दूरदर्शी दीर्घदर्शी–अ. को. २।७ ५। धीरो धैर्य्यान्विते स्वैरे बुधे क्लीबन्तु कुङ्कुमे–मे० । धी–(धीर्ज्ञान भेदे बुद्धौ च)+ईर (ईर गतौ कम्पने च । ईर क्षेपे ।) –धीर । वुद्धि र्मनीषा धिषणा धीः प्रज्ञा शेमुषी मतिः । प्रेक्षोपलब्धिश्चित्संवित्प्रतिपज्ज्ञप्ति चेतनाः ।। धी र्धारणावती मेधा–अ. को. १।५।१ बुद्धि प्रेरक । धियो यो नः प्रचोदयात् । उर प्रेरक रघुवंश विभूषण । देखे मन्त्र १ में सूरि पद की व्याख्या । धीर नाम राम का पर्याय है (राम सहस्रनाम श्लोक ४०।

घृतम्–घृतमाज्य जले क्लीवं प्रदीप्तेत्वभिधेयवत् मे०। घृतमाज्यं हविः सर्पिः–अ. को. २।९।५२, अप्सु च घृतामृते–अ.को ३।३।९६, घी, पानी, प्रदीप्त, अमृत, यज्ञशेष, अयाचित द्रव्य, मोक्ष, धन्वन्तरि, देवता । घृ सेचने, घृ क्षरण दीप्त्योः, घृ प्रस्रवणे स्रावणे इत्येके । चूर्णादिपिण्डीभाव हेतुर्गुणः स्नेहः–त. सं. ।

एनं-एतद् सर्वनाम द्वितीया एक वचन 'कर्मणि द्वितीया समीपतरवर्ति चैतदो रूपम् । एनं द्यावा पृथिवीम् ।

अजनत्-जनीप्रादुर्भावे । लङ् । छन्दसि लुङ् लङ् लिट् सर्व कालेषु । लङोऽनद्यतनत्वमतीतत्वञ्चार्थः ।

नम्नमाने- न+म्नमाने (म्नाम्यासे)+शानच+सप्तमी एकवचन

यदेदन्ता-यदा+इत्+अन्ता । यदा-जब । इत्-अयं । अन्ता- अन्तं स्वरूपनाशे ना न स्त्री शेषेऽन्ति के त्रिषु । अति बन्धने अन्तति ।

अदहन्त-दृढ किया । दृढं स्थूले नितान्ते च प्रगाढ बलवत्यपि ।

पूर्व-पूर्वेतु पूर्वजेषु स्युः पूर्वः प्रागाद्ययोस्त्रिषु-मे०। मन्त्र ८ में व्याख्या देखें ।

आदिद्- अद भक्षणे । अदः सर्वेषाम् ।

द्यावा पृथिवी-स्वर्गलोक और भूलोक । मन्त्र ३ की व्याख्या देखें ।

अप्रेताम्-पृथ प्रक्षेपे (चुरा०) पर्थयति । प्रथ प्रख्याने प्राथयति । आख्यानं दर्शनं बचनं श्रवणमित्यादि गृह्यते,

मन्त्र का संक्षिप्तार्थ है कि धीर, विज्ञ पिता (उत्पादक चालक) चक्षुषः (महावैज्ञानिक) मनसा (मन के द्वारा) घृतम् (स्नेह जल को उत्पन्न किया पहले उत्पन्न किया । पुनः द्यावा पृथिवी को बनाया । द्यावा पृथिवी के पूर्वापर भाग (विश्व के शेष भाग) को स्थित किया । तब यह प्रसिद्ध हुआ ।

इस मन्त्र में चक्षुषः पद "भृकुटि विलास जासु लय होई । राम बाम दिशि सीता सोई" श्रीरामजी की शक्ति सीताजी का वाचक है, जिनके लिये यहाँ घृतम् पद का भी प्रयोग हुआ है जो स्नेह जल का बोधक है । वेद के श्रीराम सूक्त में कहा गया है-'समुद्रादूर्मिर्मधुमां उदारदुपांशुना समममृतत्वमानट् । घृतस्य

नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभि ॥ऋ. ४।५७।१॥
अर्थात् श्रीरामजी का स्नेहजल घृत अर्थात् श्रीसीताजी का जो गुप्त नाम है वह देवताओं की जिह्वा पर विराजमान है और अमृतत्व प्रदान करने का केन्द्र (अमृत की नाभि) है अर्थात् मुक्ति प्रदाता है। श्रीरामजी ने कहा है-'अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन्। अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानो अजस्रो धर्मो हवि रस्मि नाम॥ शु. य. १८।६६-साम० ६१३-ऋ.३।२६।७॥
न्याय वैशेषिक दर्शन के अनुसार चूर्णो को सटाकर पिण्डी भाव करने वाले गुण का नाम स्नेह है और उसकी वृत्ति जल में है। विश्व की सृष्टि परमाणु संयोग से हुई और उसका संयोगका उपादान कारण यह स्नेह है। भगवान् ने कहा है 'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव। अतः जगत् सृष्टि का कारण रूप यह स्नेह सूत्र व: प्रेम जल (घृत) सीताजी ही हैं। राम के चक्षु (ज्ञान दृष्टि) के घृत (स्नेह) सीताजी के द्वारा द्यावा पृथिवी और शेष विश्व का उत्पादन हुआ। इसकी स्थिति हुई एवं प्रसिद्धि हुई। एवं घृत (जल) स्नेह (चूर्णो को जोड कर पिण्ड बनाने वाला) द्वारा सृष्टि का तात्पर्य परमाणु संयोजन द्वारा सृष्टि जैसा न्याय वैशेषिक मानते हैं का भी प्रतिपादक है।

[१०]

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक्। तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन् पर एकमाहुः॥

शु. य. १७।२६=ऋ१०।८२।२

विश्वकर्मा-विविध कर्मा, सर्व कर्मा। देखें मन्त्र १ में व्याख्या। जगदाचार्य श्रीने अपने आनन्दभाष्यमें "क्रियते इति कर्म विश्वं कार्यं यस्येत्यर्थः संसारकर्तृत्वमेतत्" (श्वे. उ. ४-१७) लिखा है अतः विश्वकर्मा श्रीरामजी हैं।

विमना-सम् इत्येकी भावम्, 'वि' इत्येतस्य प्राति लोम्यम्। विमना-विविधमना (विविध ज्ञानवन्तः-सर्वज्ञाता-विशेष मना

(विशेष ज्ञानवान् अद्वितीय वैज्ञानिक । मनु अव बोधने । मोसे धीर्ज्ञानम् अन्यत्र विज्ञानं शिल्प शास्त्रयोः अ. को. १।५।६।

आत्-अय गतौ । विहाया-विहाय महिषीमन्य राजयोषितो भागिती-मे० । विहायाः शकुनौ पुंसि गगने न नपुंसकम्-मे० १०४।६३। आकाश वत् सर्वगतश्च नित्यः ।

धाता-डु धाञ् धारण पोषणयोः । दानेऽपि । धाता हिरण्य गर्भे ना पालके त्रिषु मे० । ब्रह्माऽऽत्मभूः सुरज्येष्ठः परमेष्ठी पिता महः । हिरण्यगर्भो लोकेशः स्वयम्भूश्चतुराननः । धारण पोषण कर्ता, दाता । 'कर्ताधाता विधाता च सर्वेषां पतिरीश्वरः । सहस्र मूर्ति विश्वात्मा विष्णु विश्वधृगव्ययः ।। श्रीराम सहस्रनाम श्लोक ११३। सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत् । ऋ. १०'१०।

विधाता देखें मन्त्र ११ कीं व्याख्या । विधाता तो वेधसि मे०। धाताब्जयो निर्दहिनो विरञ्चिः कमलासनः । स्रष्टा प्रजापति र्वेधा विधाता विश्वसृड् विधिः । अ. को. १।१।१६-१७।

परमः परमस्यादनुज्ञानामव्ययं परमं परे मे०। प (पातीतिप)+ रम (रमतीति रमः)-परमः रक्षक राम । पर (सर्वोत्कृष्ट)+म (मान सीमा, मर्यादा) परम मर्यादा पुरुषोत्तम, सर्वव्यापक अनन्त परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः । श्रीराम सहस्र नाम श्लोक ११५

उत-देखे मन्त्र ३ की व्याख्या । उत् स्यात् प्रश्ने वितर्कें च मे० ।

संदृक्-सं-मभ्यगर्थे संप्रोक्तः दुस्प्रयोगो विवर्गितः ।)×दृक् (दृक् स्त्रियां दर्शने नेत्रे बुद्धौ च त्रिपु वीक्षके-मे०, सम्यक् द्रष्टा, समान द्रष्टा सम्यग्ज्ञाता ।

तेषाम्- तद् पु. षष्ठी ब. व. । यहाँ विश्व कर्मा तो एक ही हैं परन्तु उनके कार्य भेदों को लक्ष्यकर उनके मन्त्रोक्त-'धाता विधाता परमोत संदृक् विविध कार्य भेदों के नाम भेदों को लक्ष्य कर इन संज्ञाओं के लिये बहुवचन सर्वनाम तेषाम् का प्रयोग हुआ हैं, जो वस्तुतः तस्य का वाचक है ।

इष्टानि- इष्टमाशंसितेऽपि स्यात् पूजिते प्रेयसि त्रिपु-मे०। इष्टाः कृपापात्रता गता जनाः। इपु इच्छायाम्। इष्टानि इच्छितार्थानि।

समिषा-सम् इत्येकीभावम्-नि०। (इषा स्यादाश्विन इषोऽप्याश्वयुजोऽपि-अ. को. १।४।१७।' इष गतौ, इष आभीक्ष्ण्ये। पौनः पुनः भृशार्थो वा। इपु इच्छायाम्।

मदन्ति-मदोरेतसि कस्तूर्यां गर्वे हर्षे भदानयोः-मे०। मदी हर्षे। मादपति मद तृप्ती योगे मादयते। मदि स्तुति मोद मद स्वप्न कान्ति गतिपु। मन्दते। मदी हर्षग्लेपनयोः। ग्लेपनं दैन्यम्। मदयति'।

यत्रा-यस्मिन्निति यत्र (सप्तम्यास्त्रल् पा. ५।३।१०)

सप्त ऋषिन्-षप समवाये। समवायः सम्बन्धः सम्यगवबोधो वा। सपति। ऋषीगतौ। ऋषति। ऋषयो सत्य वचसः अ. को. २।७।४३, तर्को वै ऋषिरुक्त यास्क। ऋषयः सप्त विधाः ते यथा १. श्रुतर्षिः पवित्र कथादि श्रवण कर्त्ता २. काण्डर्षि वेदानां प्रधान काण्डस्योपदेष्टा, ३. परमर्षि मुनि भेल प्रभृतयः, ४. महर्षिः व्यासादयः, ५. राजर्षिः विश्वामित्रादयः ६. ब्रह्मर्षि वसिष्ठादयः, ७. देवर्षिः नारदादयः। इति।' 'महर्षयः सप्त पूर्वेचत्वारो मनवस्तथा, मद्भावा मानसा जाता येषां लोकमिमा प्रजाः॥ श्रीमद्भगवद्गीता ...॥"

"कश्यपोऽत्रि भरद्वाजो विश्वामित्रस्तु गौतमः। जमदग्निर्वसिष्ठश्च सप्तैते ऋषयः स्मृताः॥ ब्रह्माण्ड पुराणे॥" मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त, पुलहस्त था। भृगु. वशिष्ठ, नारद।" अन्तरिक्ष में ध्रुव (तारा) की प्रदक्षिणा सप्तर्षि तारा गण कर रहे हैं जो प्रत्यक्ष है। ऋषयो मन्त्र द्रष्टारः। होत्रमृषिर्निपीदन्। ऋषि दर्शनात्। स्तोमान ददर्श त्यौपमन्यवः। तद्यदेनांस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भव्यानर्षन्त ऋषयोऽभवंस्तदृषीणामृषित्वम्' इति विज्ञायते निरुक्त।' चक्षु रसन नासिका त्वक् श्रोत्र मन बुद्धि इन को सप्तर्षि कहा

जाता है क्योंकि इनके द्वारा ही विषयों को देखा जाता है वा ग्रहण होता है 'सप्त ऋषयः प्रतिहिता शरीरे सप्त रक्षन्ति सदम प्रमादम् । सप्तापः स्वपतो लोक मीयुस्तत्र जगृतो अस्वप्रजौ सत्य सदौ च देवौ ।। शु. य. ३४।५५।।शरीर में ये चक्षुरादि सप्तर्षि रक्षा करते हैं ।

पर-दूरानात्मोत्तमाः परा अ. को. ३।३।१९१ एकम्-एकाकी त्वेक एककः अ. को. ३।१।८२, एके मुख्यान्य केवलाः अ. को. ३।३।१६। एकम् रामः (रामो द्विर्नाभिभाषते बा. रा. २।१८।३०, तत्र परमात्मा एकं एव त. सं. । 'रामो विरामो' गणना का आरम्भ 'एक' और अन्त 'अनन्त' राम ही है । लोक व्यवहार में भी गिनती में एक के लिये राम शब्द का प्रयोग होता है । वेद में भी लिखा है 'तदेकमभवत् तल्ललामभवत् तन्मे हृदभवत् तज्ज्ये- ष्ठमभवत् । तद् ब्रह्मो भवत् तत् तपोऽभवत् तत् सैत्यमभवत् तेनं प्राजायत ।। अथर्व० १५।१।३।। इस मन्त्र में स्पष्ट लाम- राम का निरूपण है । संस्कृत में 'र' तथा 'ल' में कोई भेद नहीं मान जाता है । उपर उपलो मेथो भवति । 'आ उपर उपल इत्येताभ्यां साधारणानि पर्वतनामानि । निरुक्त २।६। 'रख, रखि, रग, रगि, रथि, रप, रवि, रा, रारवृ, रिगि, रुट सटि, सठ, सठि, रुष, रेप्त" आदि धातुओं और लख लखि, लग, लगिलथि, लप, लवि, ला, लारवृ, लिगि लुट, लुटि, लुट, लुठि, लुषलेप्त, आदि धातुओं का एक ही अर्थ है । लड विलासे, ललविलासे । लडति ललति डलयोर्लरयोश्चैकत्व स्मरणाल्ललतीति-सि. कौ. ।' अतः मन्त्रोक्त 'लाम'पद 'राम का स्पष्ट और साक्षात् प्रतिपादक है । बच्चे भी तोतली बोली में राम को लाम कहते हैं और वेद भी मधुर भाषा में राम को लाम कहते हैं जो वेद और व्याकरण दोनों से साधु (सुष्टु) है । उक्त मन्त्र में प्रयुक्त सातों नाम-१ एक २ लाम, ३ महत् (महान्) ४ ज्येष्ठ, ५ ब्रह्म ६ तप और ७ सत्य एक ही राम के वाचक और पर्याय हैं ।

इसलिये इन सातों को एक ही कहा गया है-'सप्त ऋषीन् पर एकमाहुः। ललाम का साक्षात् अर्थ रमणीय होता है, जो राम का वाचक है। आहुः-वक्ता विद्वांसः।

मन्त्र का संक्षिप्त अर्थ है कि विश्वकर्मा विविध प्रकार के सर्व प्रकार के ज्ञान वाला सर्वज्ञ एवं विज्ञान शिल्प (इजिनीयरिंग) जानने वाला सार्वभौम ज्ञानी है। लौकिक इंजिनियरों में कोई इलेक्ट्रीकल इजिनीयर है, तो कोई मेकैनिकल, तो कोई मेटाल-र्जिकल, तो कोई सिविल आदि। परन्तु कोई भी व्यक्ति सभी प्रकार के इजिनीयरिंग विज्ञान का ज्ञाता नहीं है। पुनः इलेक्ट्रिकल इञ्जिनीयर इलेक्ट्री मीटी का पूर्ण ज्ञान रखने वाला है, उसका ज्ञान अल्प और त्रुटि पूर्ण है। भ्रान्त भी। यही दशा अन्य इञ्जिनीयरों की भी है, परन्तु विश्वकर्मा सभी विज्ञानों का पूर्ण ज्ञाता और अभ्रान्त ज्ञाता है। उसका ज्ञान नित्य और अभ्रान्त और पूर्ण है, उसको जानने के लिये कुछ भी वाकी (शेष) नहीं है। उसने सभी पूर्ण विज्ञान के सिद्धान्तों के अधार पर विश्व का निर्माण किया है, जो आजतक पूर्ण रूप से ज्ञात नहीं हो सका है और न कभी भी पूर्ण रूप से ज्ञात हो ही और विश्वकर्मा सर्व शक्तिमान् है, वह सब कुछ करने में समर्थ है। उसके लिये कुछ भी असम्भव नहीं है वह कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम् समर्थ है। वह सर्व कर्ता और सर्व प्रेरक भी है। पुनः ये लौकिक इजिनी-यर अल्पदेश व्यापक है और विश्व कर्मा सर्वदेश व्यापक है। वह अनन्त ब्रह्माण्ड व्यापक है और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को आवृत्त किये हुये है। इस प्रकार विश्व कर्मा का ज्ञान बृहत् है, उसकी शक्ति बृहत् है और उसकी व्याप्ति बृहत् है। वह सर्वद्रष्टा (सर्वनियामक) है वह सप्तर्षि से परवर्ती भी नियन्त्रण करते हैं और देख रेख करते हैं। वे एक (राम) है। विद्वान् लोग कहते है। कर्ता धाता विधाता च सर्वेषां पतिरीश्वरः। सहस्रमूर्ति र्विश्वात्मा विष्णु विश्वधृगव्ययः॥ राम सहस्र नाम श्लोक ११३॥'

इसप्रकार इस मन्त्र में सृष्टि चक्र के सप्तर्षि मण्डल प्रभृति सभी ग्रह नक्षत्रादि कों का नियामक पर (सर्वश्रेष्ठ) एकः रामः कहा गया है।

११

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवनायन्त्यन्या ॥

शु. य. १७।२७=ऋ० १०।८२।३=अथर्व० २।१३-।

यो=जो विश्वकर्मा। नः=अस्मद द्वितीया (अस्मान्), चतुर्थी (अस्मभ्यम् षष्ठी (अस्माकम्)। पंचविध सम्बन्ध-१ स्वामीभाव सम्बन्ध, २ जन्य जनकभाव सम्बन्धः, अवयवावयविसम्बन्ध ४ स्धान्यादेश सम्बन्धं कारण कार्य सम्बन्धं।

पिता=पा रक्षणे। पाति रक्षति इति पिता पालनकर्ता जनिता च यश्च विद्यां प्रयच्छति। अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरस्मृताः।

जनिता-जनि प्रादुर्भावे+तृच्। उत्पादकः कर्तृत्व यो जो विश्वकर्मा राम।

विधाता 'धाता विधाता धातुरुत्तमः विष्णुसहस्रनाम श्लो० १८। अनन्तादिरूपेण विश्वं बिभर्तीतिधाता कर्मणत्व तत्फलानाञ्च कर्ता विधाता। अनन्तादीनामपि धारकत्वाद् विशेषेण दधातीति वा धातुरुत्तम इति नामैक सविशेषणं समाधिकरण्येन, सर्वधातुभ्यः पृथिव्यादिभ्य उत्कृष्टश्चिद्धातुरित्यर्थः। धातुर्विरिञ्चेरुत्कृष्ट इति वा वैयधिकण्येन। नाम द्वयं वा, कार्य कारण प्रपञ्चधारणाच्चिदेव धातुः। उत्तमः सर्वेषामुद्गतानामतिशयेनोद्गतत्वादुत्तमः।शांभा.।'

धामानि गृहदेहत्विट् प्रभावाधामान्-अ.को ३।३।१२४, घर, शरीर, तेज, प्रभावाजन्म,शक्ति। को.। वेद-विदज्ञाने।

भुवनानि—भुवनं पिष्टपेऽपि स्यात् सलिलं गगने जने ।मे०। अथो जगती लोको भुवनं जगत्—अ.को २।१।६। चतुर्दश भुवनानि—' १ भूः, २भुवः, स्वः, ४ जनः, ५ महः, ६ तपः, ७ सत्यम्. ८ अतल, ९ वितल, १० सुतल, ११ धरातल, १२ रसातल, १३ पाताल, १४ भूतल ।

विश्वा—विश्वात्वति विषाया स्त्री जगतिस्यन्नपुंसकम् । मे.। न ना शुण्ठ्या पुंसि देव प्रभेदेष्वखिले त्रिषु ।मे०। अखिलानि यो—जो विश्वकर्मा ।

देवानाम—देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानोभवतीति वा. यो देवः सा देवता—निरुक्त ७।१५।. 'अमरा निर्जरा देवास्त्रिदशा विबुधाः सुराः । अ.को. १।१।७।' 'ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्था अप्सु क्षितो महिनैकादश ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् । ऋ १।१३७।११ शु.य. ७।११।'

नामधा—नामकोपेऽभ्युपगमे विस्मये स्मरणेऽपि च । सम्भाव्य कुत्सा प्राकाश्य विकल्पेऽपि च दृश्यते ।मे०। नामप्रकाश्यो—अ.को. ३।३।२५६, नाम प्रकाश्य संभाव्य क्रोधोपगमकुत्सम्—अ.को. ३। ३।२५२, संज्ञा स्यात् चेतनाम—अ. को. । णम् प्रह्वत्वे शब्दे च संख्यायां विधार्थे धा—पा५।३।४२ डुधाञ् धारण पोषणयोः ।

यहाँ देवानां नामधा (देवताओं के नाम धारण करनेवाले) शब्दों का तीन अर्थ संगत है–१ देवों के नाम धारण करनेवाले) 'इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् । एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यम मातरिश्वानमाहुः ।ऋ।१।१६४। तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः । तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ।शु.य. ३२।१।' (२) देवों के नामों को सार्थक करनेवाला, उनके नामों को अर्थत्व और यथार्थ बनाने वाला–'तमेव भान्तमनुभाति सर्वम् । तस्य भासा सर्वमिदं विभाति । मु.उ. ।' देवताओं में अग्नि आदि उनके नामों की अर्थवत्ता परमेश्वर में ही है। उन्हीं के द्वारा देवताओं के नामोंकी

अर्थवत्ता होती है उन नामों अर्थों को धारण करनेवाले परमेश्वर ही हैं। देवतातो केवल नाम अर्थ रहित नाम) धारण करनेवाले हैं। उन अर्थों का संयोजक परमेश्वर है। (३) देवों को विभिन्न कार्यों का अध्यक्ष, अधिष्ठाता वा कर्ता नियुक्त कर तदनुसार उनसे कार्य करनेवाला परमेश्वर है।

एक–एके मुख्यान्यकेवलाः–अ.को. ३।३।१६।' एक शब्द के चार अर्थ होते हैं १ प्रधान, २ दूसरा, ३ केवल (सिर्फ) और ४ अङ्क १। एक का अर्थ विशेष, अद्वितीय, प्रारम्भ, आदि तत्व आदि भी होता है। यह अन्यव्यवच्छेदार्थक और अनेकत्व एवं बहुत्व विरोधी है। गणना विज्ञान में एक का अर्थ राम होता है। अद्वितीय, सर्वविलक्षण, सर्वोत्तम, मूलतत्त्व आदि इसका अर्थ है।

एव–एव चौपम्ये नियोगे वाक्य पूरणे अवधारणं च चार नियोगे च विनिग्रहे। मे०।' विशेषण संगतस्यैवकारस्य अयोग व्यवच्छेदः। विशेषण संगतस्य अन्ययोग व्यवच्छेदः।

'एक एव' पदसे 'जेहि सृष्टि उपायी त्रिविद बनाई। संग सहाय न दूजा।' इस विश्वकर्मा रामजी का इंजिनियरिंग की विशेषता का प्रतिपादक है।

तं=तद् सर्वनाम का द्वितीया एकवचन तदिति परोक्षे विजानीयात्। फलाश्रयः कर्म। उपरोक्त–'यो (नः पिता जनिता विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा देवनां नामधा एक एव) का वाचक यह 'तं' सर्वनाम पद है जो 'यद्.....तद् सामूहिक सम्बन्ध योजक सर्वनाम है।

सम्प्रश्नम्=सम् इत्येकी भावम्–नि०। सम्यगर्थे संप्रोक्त दुष्प्रयोगो निवारकः–न्या.मं। +प्रश्नोऽनुयोगः पृच्छा च प्रतिवाक्योत्तरे समे–अ.को. १।६।१०) प्रच्छज्ञीप्सायाम्, पृच्छति। ज्ञातुमिच्छा ज्ञीप्सा जिज्ञासा वा। अभिधान प्रयोजनेच्छा सम्प्रश्नः

इदं कार्यं न वेति विचार्य निर्धारणम् सम्प्रश्न प्रच्छ+नङ्=प्रश्न=यज याचयत विच्छ प्रच्छ रक्षो नङ्-पा० ३।३।९० भाववाचक कृत प्रत्यय। प्रश्नम्-जिज्ञास्यम्।

भुवना=भुवनानि। यन्ति=इण गतौ यन्ति गच्छन्ति गति गमने. गति प्राप्तौ, गति, ज्ञाने, गति मोक्षे। लटोवर्तमानत्वम्। अन्या=भिन्नार्थका अन्यतर एकस्त्वोऽन्येतराबपि-अ.को. ३।१।८२।'

शुक्ल यजुर्वेद में इसी मन्त्र के अनुरूप एक मन्त्र है

'स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त। ।।शु.य.३२।९।'

जो हमलोगों अखिल जगत् को उत्पन्न रक्षण और पोषण करने वाला है, जो विश्व का धारण करनेवाला कर्म और उसके फलों का विधान करने, जो तेज प्रभाव, जन्म, शक्ति, शरीर गृह और चतुर्दशभुवनादि को जानने वाला स्वभावतः समस्त तत्त्वार्थविद, जो देवताओं के प्रकाश, शक्ति, गुण महात्म्य आदि को धारण करनेवाला और उन नामों को अर्थवान् करनेवाला एक अद्वितीय, सर्वोत्तम विश्वकर्मा रामजी हैं। सभी प्राणी उन्हीं दिव्य लीलाकारक देव (राम) को प्राप्त करते हैं या उस ज्ञातव्य सम्प्रश्नरूप श्रीरामजी के लिये जिज्ञासु होते हैं।

विभिन्न देवताओं के नाम एक ही शक्ति के विभिन्न रूपों के धारक हैं। वर्तमान भौतिक विज्ञान के अनुसार छः प्रकार की भौतिक शक्तियां हैं-१ प्रकाश, २ ताप, ३ विद्युत, ४ चुम्बकत्व, ५ रसायनिक शक्ति और ६ यान्त्रिकशक्ति। देखने में ये छः प्रकार की हैं। परन्तु ये सभी एक प्रकार से किसी भी अन्य पञ्चप्रकारों में परिवर्तित की जा सकसी हैं जिसे(...)कहते हैं। ये शक्तियां न तो उत्पन्न की जा सकती है और न विनाश ही। इसे(...)कहते हैं। केवल इन षड्विध शक्तियों का एक रूप

से किसी भी अन्य रूपों में परिवर्तन किया जा सकता है। अतः वस्तुतः ये षड्विध भौतिक शक्तियां एक ही हैं। इसी प्रकार ये एकादश द्युस्थानीय, एकादश अन्तरिक्ष स्थानीय और एकादश पृथिवी स्थानीय ३३ देवता वस्तुतः एक ही हैं। एक ही अग्नि देव पृथिवी स्थान में अग्नि अन्तरिक्ष में विद्युत और द्युस्थान में सूर्य है। इसी प्रकार एकादश देवताओं के उक्त त्रिस्थानों में तीन रूप होने से ३३ प्रकार कहे गये हैं। ये सभी शक्तियां परमेश्वर श्रीराम की हैं और वे ही इन देवताओं को शक्ति प्रदाता हैं। अतः उन्हें देवताओं का नाम धारण करनेवाला कहा जाता है।

इस मन्त्र में विश्वकर्मा श्रीरामजी को जिज्ञास्य (से प्रश्न) वा ज्ञेय तथा एक (अद्वितीय रामः) कहा गया है।

१२

त आयजन्त द्रविणं समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना।
असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ।

शु.य १७।२८=ऋ.१०।८२।४॥

त—वे विश्वकर्मा राम। आयजन्त—आ (समन्ताभावेन) यजयन्त (यज पूजासङ्गति करण दानेषु) द्रविणं द्रविणं न द्वयोर्वित्तो काञ्चने च पराक्रमे—मे०। समस्मा—

ऋषयः—ऋषयः सत्यवचसः—अ.को २।७।४३। ऋषयो मन्त्र द्रष्टारः तर्कों वै ऋषिरुक्तः ऋषीगतौ गति गमने, गति प्राप्तौ. गति ज्ञाने, गति मोक्षे। ऋषियों ने।

पूर्वे—पूर्वेतु पूर्वजेषु स्युः पूर्वः प्रागाद्ययोस्त्रिपु—मे०

जरितारो—जरिता—गरिता नि०। गरिता स्तोता। जॄ वृ स्तुतौ च वेदे। जरितारः स्तोतारः। स्तोताओं के न—इव। समान।

भूना—भू भुविजातौ+ना मानवः। भू सत्तायाम्।

असूर्त—लिङ्ग शरीरैः। असुक्षेपणे अस्यति इति।

सूतँ-षूङ् प्राणीगर्भ विमोचने । सूते ।

रजसि-रजो रेणौ परागेस्यादातवे च गुणान्तरे-मे० ।

निधत्तो-डु धाञ् धारण पोषणयोः । नि निवेशभृशार्थयोः ।

नित्यार्थ संशय क्षेप कौशलो परमेषु च । गे०

ये-जो विश्वकर्मा राम

भूतानि-भूतों को । युक्ते क्ष्मादावृते भूतं प्राण्यतीते समे । अ.को. ३।३।७८ युक्त, पृथिवी-जल-तेज-वायु आकाश, सत्य प्राणी बिता हुआ सदृश । प्राप्त ।

सम्यगर्थे सं शब्दो दुष्प्रयोगो निवारण-न्य.मे. । सम्-सम् इत्येकी भावम्-नि० । सम् कल्याणे सुखे सन्तु शोभनार्थ समार्थयोः । सङ्गार्थे-मे०

अकृण्वन्-डु कृञ् करणे । लङ् । अनपनत्व विशिष्ट अतीतत्व । लङोनद्यतनत्वमतीतञ्चार्थः छन्दसि लुङ् लिट् सर्वकालेषु

इमानि-इदम् नपुंसक द्वितीया बहुवचन (इदमस्तु सन्निकृष्टम्)

विश्वकर्मा श्रीराम ने न केवल पृथिवी आदि को बनाया अपितु इसे धनों से परिपूर्ण कर इसे रत्नगर्भा और वसुन्धरा बनाया । नाना प्रकार के अन्न, फल, पुष्प, जल, रस, दुग्ध मधु, घृत, वनस्पति आदि सर्वरस भोजनादि पोषक पदार्थों से परिपूर्ण किया । उन्होंने प्राचीन काल के ऋषियों को धनादि देकर यज्ञ कर्म प्रारम्भ किया ।

इस यज्ञ में केवल सृष्टि कार्य नहीं अपितु सर्व आनन्द पूर्ण सृष्टि का निरूपण है । सच्चिदानन्द श्रीराम की सृष्टि भी सत् चित् आनन्द रूपा है ।

चराचर विश्व के उत्पन्न होने पर ऋषियों प्राणियों को बनाया उनको वेदादि धन प्रदान कर स्तोता रूप से यज्ञानुष्ठान किया । विश्व को विश्वकर्मा श्रीराम ने बनाया । पुनः ऋषियों द्वारा प्राणियों की सृष्टि हुई-'महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्था । मद्भावा मानसा जाता येषां लोका इमाः प्रजाः ।' इसी मन्त्र का संकेत इसमें है ।

१३

परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति ।
किं स्विद् गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्तपूर्वे ॥

शु.य. १७।२९=ऋ.१०।८२।५

परो=पः श्रेष्ठोविदूरा योत्तरे क्लीवन्तु केवले-मे० ।

दिवा=दिव्य लोक पर=ऊपर देखें । एना=एतद् । इस

पृथिव्या=भूर्भूमिरचलाऽनन्ता रसा विश्वम्भरा स्थिरा । धरा धरित्री धरणि क्षोणिर्ज्या काश्यपीक्षितिः ॥ सर्वं सहा वसुमती वसुधोर्वी वसुन्धरा ॥ गोत्राः कुः पृथिवी पृथ्वीक्ष्माऽवनिर्मेदिनी मी ॥ अ. को. ॥ विपुला गह्वरी धात्री गौरिला कुम्भिनी क्षमा । भूत धारी रत्नगर्भा जगती सागराम्बरा ॥ पृथ प्रक्षेपे पर्थयति ।

परो-ऊपर देखें । देवेभिः-देवोदानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वाद्युस्थानो भवतीति वा यो देवः सा देवता-नि० ७।१५।' तृ. ब, व. ।

असुरैः-असु क्षेपणे अस्यति । उरन्' अथवा 'र' प्रत्यय । तृ. ब. व. ।

यद्-जो (न.) । अस्ति-अस भुवि अस्ति । लट । लटो वर्त्तमानत्वम् ।

किं स्विद्-कि कुत्सायां वितर्के च निषेध प्रश्नयोरपि-मे० । किं पृच्छाया जुगुप्सने-अ. को. । आहो उताहो किमुत विकल्पे किं किभूत च-अ. को. । स्वित् प्रश्ने च वितर्कें च तथैव पादपूरणे मे० । स्वित् प्रश्ने च वितर्कें च-अ. को. । युक्त्या अर्थ निर्णयो वितर्कः ।

गर्भम्-गर्भो भ्रूणेऽर्भके कुक्षौ सन्धौ पनस कण्टकौ-मे० ।

प्रथमं-प्रथमस्तु भवेदादौ प्रधानेऽपि च वाच्यवत्-मे० ।

दध्र-दध धारणे । धारण किया है ।

आपो-आपः स्त्री भूम्नि वार्वारि सलिलं कमलं जलम् । पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम् ॥ अ. को. १।१०।३।

यत्र–यस्मिन्निति यत्र । सप्तम्यास्त्रल्–पा० ५।३।१०

देवाः–सभी देव द्युस्थान वासी ।

सम्यगर्थे सं शब्दो दुष्ययोमो निवारण–न्याः मे. ।”

सम्–सम इत्येकी भावम्–नि० । सम् कल्याणे सुखे स·तु शोभनार्थ समार्थयोः । सङ्गार्थे–मे०’ एकी भाव स

अपश्यन्त–दृशिर प्रेक्षणे पश्यति । लङ् । लङोऽनद्यतनत्वम तीतत्वञ्चार्थः । छन्दसि लुङ् लङ् लिट् सर्वकालेषु ।

पूर्वे–पूर्वे तु पूर्वजेषु स्युः पूर्वः प्रागाद्ययोस्त्रिषु–मे० । पूर्वोऽन्यलिङ्ग प्राग्राह पुं बहुत्वेऽपि पूर्वजान्=अ. को. ३।३।१३४

विश्वकर्मा श्रीराम का दिव्यलोक साकेत धाम इस पृथिवी लोक असुर लोक और देवलकों के दूर अकेले (अद्वितीय) ऊपर, इन-से भिन्न और श्रेष्ठ स्थित है । यह पर लोक है । युक्ति पूर्वक अर्थ का निर्णय करें कि आप (भुवन) ने कौन गर्भ धारण किया है कि सभी देवता इसमें एकीभाव से दिखते हैं ? यह मन्त्र प्रश्नात्मक है । इस मन्त्र का उत्तर आगे के मन्त्र में है ।

इस मन्त्र में विश्वकर्मा श्रीराम के नित्य लोक (दिव्य लोक) के प्रति जिज्ञासा है ।

१४

तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥

॥ शु. यः १७।३०=ऋ. १०।८२।६॥

तम्–उसी विश्वकर्मा को । इद्–यह । गर्भ–गर्भ को । प्रथमं–पहले । दध्र–धारण किया आपो–जल ने ।

यत्र देवा–जिसमें । देवाः–सभीदेवता । सम्–एकीभाव अगच्छन्त–हो जाते हैं । विश्वे–सभी ।

अजस्य–अजश्छागे हरि ब्रह्म विधुस्मर हरे नृपे–मे० ।

अज गति क्षेपणयोः । जनी प्रादुर्भावे । हरि (रामाख्यमीशं हरिम्)-श्रीराम का ।

नाभौ-नाभिर्मुख्य नृपे चक्रमध्य क्षत्रियोः पुमान् । मे० । नाभ्या आसीदन्तरिक्षं-शु.य. ३१।१३।

अधि-अधि' इत्युपरिभावे-नि० । अधिस्यादधिकारेचापीश्वरे च निगद्यते । मे०।

एकम्-एके मुख्यान्यकेवलाः-अ. को. ३।३।१६।

एक अद्वितीय । सर्वोत्तम, सर्वविलक्षण ।

अर्पितम्-ब्रह्माण्ड । यस्मिन्-जिसमें विश्वानि-सभी । भुवनानि-लोकप्राणी । तस्थुः-रहते हैं । तसि अलं करणे । तसु उपक्षये ।

उन्हीं विश्वकर्मा को जल ने गर्भ में धारण किया है । विश्वकर्मा राम में ही सभी देवता एकी भाव से रहते हैं-'रमन्ते योगिनो यस्मिन्सत्यानन्दे चिदात्मनि इति राम पदे नासौ परं ब्रह्माऽभिधीयते ॥ स्क० पु० ॥' उस अज राम की नाभि (चक्रमध्य) में ब्रह्माण्ड स्थित है । उस ब्रह्माण्ड में सभी प्राणी रहते है ।

इन मन्त्र में विश्वकर्मा श्रीराम को गर्भ में रखने वाला आप (स्नेह) कहा गया है । बिश्वकर्मा श्रीराम स्नेह (प्रेम) के गर्भ में ही रहते हैं-"रामहि केवल प्रेम पिआरा । जानि लेहु जो जाननि हारा । मिलहि न रघुपति बिनु अनुरागा किए कोटि जप योग विरागा ॥ "परम प्रेम रूपा च अमृत स्वरूपा च । ना. भ. सू. ॥ अतः मानस में कहा है-"राम प्रेम मूरति तनु आहीं राम प्रेम की विस्तृत मूर्ति है । अतः आपः आप (स्नेहप्रेम) राम का वाचक है-"तदेवाग्निस्तदादित्य तद् वायुस्तदुचन्द्रमाः । तदेव शुक्र तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥ शु. य. ३२।१ एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः । स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्व तो मुखः ॥

शु. य. ३२।३" और इस मन्त्र में उसे आपः (स्नेहः) कहा गया है। किञ्च 'ता आपः' इस स्त्री लिंग पद से विश्वकर्मा श्रीराम की अभिन्न सहकारी शक्ति श्रीसीता-'सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्व धायाः ॥ शु. य. १।४।' का सङ्केत है।

१५

न तं विदाथ य इमा जजानान्य द्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थ शासश्चरन्ति ॥

शु. य. १७।३१-ऋ. १०।८२।७।

न-नहीं। तम्-उस विश्वकर्मा राम को।

विदाथ-तुमलोग जानते हो, विद् ज्ञाने'

य-जो विश्व निर्माता इमा-इन द्यावा और पृथ्वी को सभी चराचरों को। जजान-उत्पन्न किया है।

अन्यद-अन्योऽसदृशेतरयोरर्थ्यंस्यात् स्वामि वैश्ययोः-मे०।

युष्माकम्-तुमलोगों का अन्तरं-अन्तर भवकाशावधि परि-धानान्तर्द्धि भेदतादर्थ्ये-मे०।

बभूव-हुआ। नीहारेण-अवश्यायस्तुषार स्तुहिनं हिमम्। प्रालेयं मिहिका च-अ. को.१।३।१८

प्रावृता-प्र(प्रकर्षरूपेण) आवृता।

जल्प्या-जल्प व्यक्तायां वाचि। 'यथोक्तोपपन्नश्छलजाति निग्रह स्थान साधनोपालम्भोजल्पः-न्या. सू. १।२।२।

च-और। असु क्षेपणे अस्यति+तृप तृप्तौ संदीपने ईत्येके, तर्पयति, तृप प्रृणने, प्रृणनं तृप्तिस्तर्पणं च'

उक्थं-वेदान्। सामभेद साम सान्त्वने। सान्त्वन प्रयोगः अकटु भाषणम्।

शासः-शासु अनुशिष्टौ, शास्ति इति शास्त्रम्। वेदानुशासनम्

चरन्ति-चर गति भक्षणयोः। लट्। लटो वर्त्तमानत्वम्।

न तं विदाथ (तुमलोग उस विश्वकर्मा श्रीराम को नहीं जानते हो) य इमा जनान (जो विश्वकर्मा राम इस चराचर विश्व को उत्पन्न किया हैं) अन्यद् युस्माकं अन्तरं बभूव (यह जो अचर और चर तुम लोगो का विश्व है वह विश्वकर्मा राम उससे भिन्न है। यदि अन्तर का अर्थ भीतर व्याप्त माने तो भी अर्थ होगा यह जो तुमलोगों का अचर (अचित्) चर (चित्) विश्व है उसके अन्तर्गत विश्वकर्मा श्रीराम व्याप्त है) नीहारेण प्रावृता जल्प्या (हिम रूपी अज्ञानान्धकार से आच्छन्न हो कर तुमलोग नाना प्रकार का मिथ्या प्रलाप या मिथ्या कल्पना करते हो) च (और) असुतृप उक्थं शाश्चरन्ति (वे स्तुतियों से तृप्त होने वाले अकटु वाणी बेद वाक्यों के द्वारा इस विश्व पर शासन करते हुये विचरण करते हैं)।

इस मन्त्र में विश्वकर्मा श्रीराम का चिदचित् से श्रेष्ठ तथा वेदानुशासन द्वारा विश्व का शासक बतलाया गया है एवं ज्ञान (वेद) द्वारा ज्ञेय बतलाया गया है। ज्ञान गम्यं ज्ञान गेयं हृदि सर्वस्य तिष्ठितम्। जगदाचार्य श्रीपूर्णामन्दाचार्यजी ने श्रीबोधायन-मतादर्शन में परपुरुष श्रीरामजी को वेदबोधित बतलाय है "ब्रह्म सत्वे प्रमाणं च शास्त्रमेव सुनिश्चितम्। 'तन्त्वौपनिषदञ्चैतच्छ्रुति वाध्यप्रमाणतः" (१३२)

[१६]

विश्वकर्मा अजनिष्ट देव आदिद् गन्धर्वो अभवद् द्वितीयः।
तृतीयः पिता जनितौषधीनामपां गर्भं व्यदधात् पुरत्रा ॥
शु. य. १७।३२॥

विश्वकर्मा—विश्वोत्पादक। अजनिष्ट—जनीप्रादुर्भावे (दिवा०)+लङ्।

देव=दिवुक्रीडा विजिगीषा व्यवहार द्युति स्तुति मोद मद स्वप्न कान्ति गतिषु (दिवा०)। दीव्यति क्रीडति इति देवः=रमुक्रीडा याम् (भ्वा०) रेमेक्रीडति इति रामः (श्रीमान्दिव्यगुणाब्धिरौपनिषदो हेतुः शरण्यः प्रभुर्देवेशो जगतामनादिनिधनो ब्रह्मादिदेवार्चितः। ताराकानलचन्द्रमो बहुमहः सौदामिनी भासकोऽजय्यो वीरसपत्न शस्त्रनिचयै र्जेता च तेषां मुहुः ॥

नित्यो ब्रह्म विधायकश्च पुरुषो वेदप्रदो ब्रह्मणे नित्यानां शरणं तपः प्रभृतिभिः सद्योगिनां दुर्लभः। एकश्चेतनचेतनो भृत जगद्ध्येयः स्वतन्त्रो वशी, स प्राप्योस्ति मुमुक्षुभिः सुगुरुभिः सत्सङ्गिभिस्तत्परैः (श्रीवै. म. भा. १।२-३)

आदित्=प्रथमः। क्रमवाचकः। गन्धर्वो-स्वर्गेषु पशुवाग्वज्र दिङ् नेत्र घृणि भू जले। लक्ष दृष्टया स्त्रियां पुंसि गौः-अ. को. ३।३।२५। गां भूमिं धारयति इति गन्धर्वः। गां स्वर्गं (धाम्) धारयति इति गन्धर्वं। गां इषुं दधाति इति गन्धर्वः (धनुर्धरः रामः (गन्धर्वः शरभो रामः सृमरो गवयः शशः-अ. को. २।५।११)

अभवद्-भू सत्तायां (भ्वा०) लङ्। आत्मधारणानुकूलो व्यापार सत्ता। लङोऽनद्यतनत्वमतीतत्वञ्चार्थः। छन्दसि लुङ् लङ् लिट् सर्वकालेषु।

द्वीतीय-क्रमवाचक। तृतीय-क्रमवाचक। पिता-देखें मन्त्र १ की व्याख्या।

जनिता-जनीप्रादुर्भावे+तृच्। प्रादुर्भाव कर्ता, उत्पादक औषधीनाम्-अजातो सर्वमौषधम्-अ. को. २।४।१३५। षष्ठी बहुवचन। चतुर्विध सम्बन्ध (स्वस्वामी भाव, जन्यजनक भाव अवयवावयवि और स्थान्यादेश। रोगापहारक पदार्थानाम्। शारीरिक रोग मानसरोग वाचिकरोग।

अपां-जलं। गर्भम्-गर्भो भ्रूणेऽर्भके कुक्षौ सन्धौ पनस कन्टकौ-मे०।

व्यदधात्–दध धारणे (भ्वा०) लङ्। छन्दसि लुङ् लङ् लिट् सर्वकालेषु।

पुरत्रा–गारे नगरे पुरम्–अ. को. ३।३।१८४ पुरं नपुसकं गेहे देह पाटलिपुत्रयोः। पुष्पादीनां दलावृत्तौ ना गुग्गुलौना पुरि। मे०। पुरोऽग्रे प्रथमे भूयोऽधिकारे च पुनः। मे०। त्रैङ पालने (भ्वा०) त्रायते इति त्रा। पुरं त्रायते इति पुरत्रा।

इस मन्त्र में विश्वकर्मा (राम) के क्रम रूप तीन रूपों वर्णन किया गया है कि प्रथम वह देव=राम अर्थात् जगत्क्रीडा कर्ता रूप हुआ। दूसरे वह गन्धर्व=राम अर्थात् गां (पृथिवी) और गां (स्वर्ग) को धारण करनेवाला अधिष्ठान, आश्रय, आधार अधिकरण वः स्तम्भ रूप हुआ तथा गां इषुं दधाति इति गन्धर्वः रक्षक और संचालक हुआ तिसरे वह पिता (जनिता चोपनेता च यश्च विद्यां प्रयच्छति। अन्नदाता भत्रयाता पञ्चैते पितरः स्मृताः।) पालक रूप हुआ। इस प्रकार जगत्सृष्टि क्रम में प्रथम सृष्टिकार्य द्वितीय धारण और रक्षककार्य और तृतीय जीवोत्पादन, स्कार, पोषणादि कार्य किया। अथवा आदिद् से प्रथमा विभक्ति वाच्य व्यापाराश्रयकर्ता जगत्कर्तृत्व। द्वितीयपद से द्वितीया विभक्ति वाच्य फलाश्रयः, एवं तृतीयः पद से तृतीया विभक्तिवाच्य कर्तृकरणयोः वा साधकत्त संकरणं का ज्ञापन होता है। इस मन्त्र में प्रयुक्त विश्वकर्मा देव, गन्धर्व, पिता, पुरत्रा पद रामार्थक और राम के वाचक सिद्ध हैं अपांगर्भ से अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न सम्भवः। आदि) का ज्ञापन है। जनी प्रादुर्भावे से सृष्टि की अभिव्यक्ति और सत्कार्य का ज्ञापन है। औषधीनाम् (रोग [illegible] वारक पदार्थानाम) उत्पादक है। अच्युतानन्दगोविन्द नामोच्चारण भेषजात्। नश्यन्ति सकला रोगा सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ ना.पू. ३४। ६१॥ अकालमृत्यु शमनं सर्वव्याधि विनाशनम्। सर्व दुःखोपशमनं हरि पादोदकं स्मृतम्॥ ना.पु. ३७।१६॥

इस प्रकार इस विश्वकर्मा सूक्त के षोडश मन्त्रों में वैदिक प्रक्रिया से सृष्टि विज्ञान का निरूपण किया गया है। जिसमें बिश्वकर्मा राम के चिदचिद् विशिष्ट शरीर वा रूप का भी प्रतिपादन है तथा चित्-अचित्-ब्रह्म इन तत्त्वत्रय का भी दर्शन है। सृष्टि के विश्व के १ सृष्टिवाद, २ विकासवाद, ३ आविर्भाववाद एवं ४ यज्ञवाद–इन चतुर्विध प्रकारों का निरूपण एवं सामञ्जस्य है। इसमें बौद्ध दर्शन के सर्वं दुःखम् के निराशा का निराश तथा सर्वानन्दवाद का दर्शन है। श्रीराम का आनन्द दर्शन श्रीरामानन्द दर्शन का बीज है। जगत् के लीला रूपका निरूपण है। इसमें सृष्टि, सृष्टि कर्ता, सृष्टि विज्ञान, सृष्टि प्रयोजन आदि का निरूपग है और विश्वकर्मा श्रीराम की महिमा का तात्पर्य है।

इस विषय में आचार्यपीठ श्रीकोसलेन्द्रमठ सरखेजरोड, पो० पालडी अहमदाबाद–३८०००७ से जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी द्वारा प्रकाशित "ज.गु. श्रीरामानन्दाचार्यपीठ पत्रिका के दिसम्बर १९८२ और जनवरी १९८३ के अङ्कों में प्रकाशित "ईश्वर के साधक प्रमाण", सितम्बर १९८६ के अङ्क में प्रकाशित "ईश्वर की सत्ता और सर्वज्ञता', ईश्वर प्रत्यक्ष प्रमाण वेद्य है। ईश्वर शरीरी है। सगुण निर्गुण तत्त्व विवेक। अमूर्त्त परीक्षा, निर्विकल्प निर्णय एवं जुलाई १९८७ के अङ्क में प्रकाशित मेरे लेखों को पढ़ने का कष्ट करें।

ॐ शान्तिः

जगत्पते ? श्रीश ? जगन्निवास ? प्रभो? जगत्कारण रामचन्द्र ? ।
नमो नमः कारुणिकाय तुभ्यं, पादाब्जयुग्मे तव भक्तिरस्तु ॥
(श्रीवैष्णवमताब्जभास्करः ५।१५)

---०---

卐 श्रीराम जय राम जय जय राम 卐